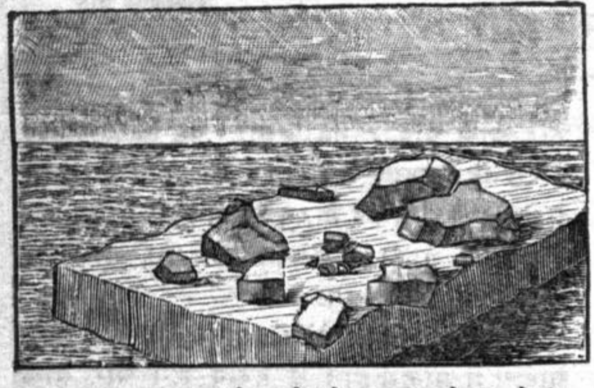
लड़कों ने कहा नहीं।

वृजकिशोर ने कहा नदियां अक्सर पहाड़ों में से निकलती हैं जो सिर्फ़ पत्थर और चट्टानों के ही बने होते हैं। नदियां इन्हीं पहाड़ों के बीच सैकड़ों कोस चट्टानों और शिलाओं के ऊपर ही बहती हैं।

गिरिधर बोला "तो बालू इन्होंने कैसे पैदा किया?"

वृजकिशोर ने हँस कर कहा "देखो, अगर यह छोटा सा पत्थर का टुकड़ा इस बड़ी शिला पर जोर से लुड़का करे तो क्या होगा"।



उसने कहा "किनारों से बहुत छोटे छोटे टुकड़े टूट जायंगे।"

वृज०-"अच्छा, अगर उन्हींके ऊपर यह टुकड़ा १५ मिनट तक दौड़ाया जाय, तो वे क्या होंगे? विचारो तो मालूम होगा कि वे इन्हीं बालू के कणों के बराबर होकर शिला पर फैल जांयगे। इसी तरह से अगर किसी शिला पर एक छोटा पत्थर का टुकड़ा कुछ देर तक बराबर दुलकाया जाय तो, वह सिल पर बालू के कणों के ऐसा हो कर फैल जायगा"।

केशव ने कहा "हां, यह तो समझ गए। यहां आपने पत्थर से बालू बनाया, लेकिन नदियों में किस ने बनाया"?

वृजकिशोर ने कहा कि इन्हीं नदियों में जब वे पहाड़ों के बीच बहती हैं, बड़े बड़े पत्थर के टुकड़े टूट कर गिर पड़ते हैं और पानी की तोड़ में (पर नदी के तल में), शिलाओं के ऊपर सैकड़ों कोस तक महीनों लुढ़का करते हैं और घिस कर बालू के कण हो जाते हैं और नदी के जल के साथ बहते बहते किनारे पर फैलते चले जाते हैं।

केशव चकित और विचार कर हँसता हुआ कहने लगा "तो यह बालू की रेत इसी तरह से पहाड़ों के टुकड़ों के पानी में दौड़ने और घिसने से बनी है"।

वृजकिशोर ने कहा "हां, यह हज़ारों वर्ष से बनती चली आ रही है और इसी तरह से हज़ारों वर्ष तक बनती चली जायगी"।

## पानी

गिरधर ने कहा "तो जल ही इन्हें इतनी दूर दूर तक ले आता है?"

वृजकिशोर ने कहा "हां, जल एक अपूर्व पदार्थ है। यह सबका उपकार करता है, पर भला यह तो बतलाओ कि जल में और बालू में क्या फरक है?

सब लड़कों ने कहा बहुत फरक है। जल बहा करता है और बालू सदा एक ही जगह पड़ा रहता है।

तब वृजकिशोर ने कहा "वाह! क्या बालू के कण नहीं चलते? जब दोपहर को हवा जोर से चलती है तो ये भी तो एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं"।

केशव ने कहा "हां, यदि इन्हें कोई ले जाने वाला हो। जैसे नदी का जल, जैसा आप कहते हैं, इन्हें पहाड़ों से लाया, वैसे ही हवा भी इन्हें उड़ा कर एक जगह से दूसरी जगह ले जायगी। ये आप से नहीं डोलते, पर जल को तो हम यदि यहां गिरा कर छोड़ दें तो वह कभी यहां नहीं रहेगा। वह दौड़ कर कहीं और ही जाया चाहेगा"।

वृजकिशोर ने कहा, 'शाबास, यह तुमने एक अच्छा भेद दिखाया। जल सदा यदि रोका न जाय तो ऊंची जगहों से नीची जगहों की ओर दौड़ेगा,

यह कभी ऊंची जगह पर आप से नहीं रह सकता"।

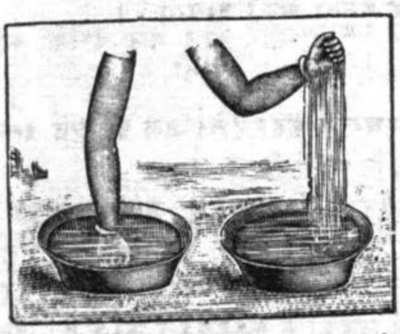
इतने में रानी को चुपचाप बैठा देख वृजकिशोर ने कहा "रानी, तुमने कुछ नहीं बतलाया। अच्छा अपनी मुट्ठी में थोड़ी सा बालू तो लाओ"।

उसने मुट्ठी बाँधी और थोड़ा सा बालू ले आई।

फिर उन्होंने कहा "अच्छा एक मुट्ठी पानी तो ले आओ"।

रानी हँसने लगी और बोली "पानी मुट्ठियों में नहीं आ सकता"।

वृजकिशोर ने कहा "क्यों, क्या होता है देखो तो"।



उसने पानी में हाथ रख कर मुट्ठी बाँधी और दिखलाया कि उसमें कुछ भी पानी नहीं है।

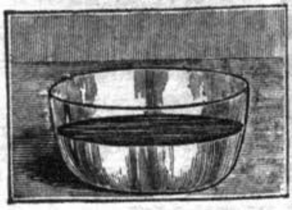
तब वृजकिशोर ने कहा "देखो यह जल का दूसरा स्वभाव है। उसको तुम हाथों से नहीं पकड़ सकते। चुटकियों से भी तुम उसको धर नहीं सकते। पर एक बड़ा ही सहज प्रश्न मुझे और करना है। देखें इसका उत्तर कौन देता है। देखो, यहां जितनी चीजें तुम देखते हो, सभों को कोई शकल या आकार है। यह चारपाई, गाय, किताब, छड़ी, सबही कोई न कोई आकार के हैं, पर बतलाओ तो पानी का कौनसा आकार है?

लड़के विचारने और आपस में एक दूसरे की ओर देखने लगे। तब वृजकिशोर ने कहा "देखो, यह कटोरा गोल है। यदि इसको हम पानी से भर दें तो उसमें पानी का आकार कैसा होगा।"

लड़कों ने कहा "गोल कटोरे की तरह।"

वृज०–"अच्छा यदि लोटे में भर दें तो?"

लड़के–"लोटे की तरह"।





इस पर वृजकिशोर ने कहा "देखो, जल का कोई खास आकार नहीं होता। वह जिस बरतन में रख दिया जाय वैसी ही शकल का बन जाता है। यदि वह बोतल में रक्खा जाय तो बोतल का और यदि थाली में रक्खा जाय तो थाली के आकार का हो जायगा"।

ऐसा देख वे लड़के जो पहिले विचार और आश्चर्य में मालूम होते थे हँसने लगे और बोले "कहिये, और भी कोई इसका ऐसा स्वभाव है जिसको हम लोग देखते हों पर जानते नहीं?"

वृजकिशोर ने कहा "वह थाली तो हमें दो, उसमें थोड़ी बालू भी फैला दो।"



ऐसा करने पर उन्होंने उस थाली के बीच में बालू को चारो ओर से खींच कर जमा कर दिया और एक छोटा सा ढेर लगा दिया। फिर बालू को फेंक थाली को पानी से भर दिया और बोले कि "बालू की नांई इस जल को भी थाली

के चारों ओर से बटोर, क्या तुम लोग बीच में जमा करके एक ढेर लगा सकते हो ?"

केशव ने कहा "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यह सदा थाली भर में फैला रहेगा। इसके ऊपर की सतह ऊंची नीची नहीं हो सकती"।

बृजकिशोर ने कहा "देखो, जल के इतने स्वभाव हैं। इसका किसी बरतन में कोई ढेर नहीं लगा सकता। यह सदा उसमें फैला रहेगा और एक बराबर सतह रक्खेगा। यह सदा ऊंचे स्थानों से बह कर नीचे की ओर जायगा। इसको कोई कभी मुट्ठी बाँध कर या चुटकी से उठा नहीं सकता। उठाते ही नीचे गिर पड़ेगा, और इसका कोई निज का आकार नहीं है। जिस बरतन में रख दिया जाय उसके ही आकार का हो जायगा।"

इतने में लड़कों की घर के भीतर खाने की बुलाहट हुई और वे चलने पर उद्यत हुए। तब बृजकिशोर ने कहा "यदि तुम लोग सायंकाल में फिर आओ तो मैं एक अद्भुत वस्तु तुम लोगों को दिखाऊंगा। लड़के बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़ी चाह से आने का वादा किया!

बिल्ली

संध्या होने पर वे उत्सुक लड़के चिराग लगते ही ब्रजकिशोर के पास गए और बोले कि हम सब उस अद्भुत वस्तु को देखने आए हैं।

ब्रिजकिशोर ने कहा "अच्छा, बैठो, हमने उसको अभी पकड़ा है, देखो"।



उन्होंने कोठरी के कोने में से एक बिल्ली निकाली जिसको उन्होंने वहां बाँध रक्खा था।

केशव ने कहा "वाह, यह तो रानी की बिल्ली है, क्या इसीको आप अद्भुत कहते हैं?"

बृजकिशोर ने कहा "तुम लोग अद्भुत के माने नहीं जानते, क्या तुम इस बिल्ली के बारे में सब कुछ जानते हो?"

केशव ने कहा "हां"

बृजकिशोर ने कहा "भला कहो तो इसका सिर कैसा होता है?"

केशव—"गोल"

बृज०—"कान"

केशव—"खड़े खड़े"

बृज०—"तुम्हारे कान और इसके कानों में क्या फरक है?"

केशव चुप हो रहा।

बृज०—"देखो, नहीं जानते। फरक यह है कि हमलोग अपने कानों को हिला नहीं सकते, और यह हिलाही नहीं सकती पर जिधर चाहे उधर फेर भी सकती है। अच्छा कहो तो, इसकी आंखों की पुतलियां कैसी होती हैं?"

वे सब चुप हो रहे।



"इसी लिये हम इसको अद्भुत कहते हैं। देखो, यहां उँजेले में इसकी आंख की पुतली कैसी पतली रेखासी ऊपर से नीचे खिंची है पर अभी इसको अंधेरे घर में ले जाओ तो यही पुतलियां जो रेखा सी हैं फैल कर मटर के दाने के बराबर हो जायंगी। जानते हो यह क्यों ऐसा करती है"।



केशव—"नहीं"

बृज०—"अंधेरे में देखने के लिये"।

"रानी जरा इसके पंजों तथा हाथों के तू छू, देख तो ये कैसे हैं"।

रानी ने कहा ये तो "बड़े कोमल हैं"।



"फिर जब क्रोधित हो यह इनसे मारती है तो खून क्यों निकलता है?"

केशव ने कहा "उनके भीतर नह है। उनको रानी ने नहीं देखा है" बृजकिशोर ने उसके एक पंजे को दबाया और चोखे घुमे घुमे पांच पांच नह अगले और चार चार पिछले पञ्जों में दिखलाए और कहा, "देखो इन्हींसे यह शत्रु को मारती है। और इन्हींको धंसा कर दिवाल या पेड़ों पर चढ़ जाती है।"



"इसके बाल और चमड़ों की ओर देखो, छूने में ये कैसे कोमल हैं, पर इसकी जीभ, दांत और मूछें बड़ी विचित्र और काम की हैं। इसकी जीभ बड़ी खरखरी होती है जिससे यह अपने रोएं को चाट साफ करती है, मांस को हाड़ से छुड़ा कर खाती है, और इसके दांतों को तो देखो, क्या ये तुम्हारे दांतों की तरह हैं?" बृजकिशोर ने उसको सुहरा कर उसके मुंह को थोड़ा सा खोलकर दिखलाया और पूछा "क्या देखते हो"?

गिरिधर ने कहा "ऊपर और नीचे दो दो दांत बड़े लम्बे पतले और चोखे चोखे हैं"।

"हां वह इन्हींसे चूहों को पकड़ती है और फाड़ डालती है, लेकिन क्या तुम लोग जानते हो यह कैसे खाती है?

रानी ने कहा "हम लोगों की तरह"।

बृजकिशोर ने कहा "नहीं, देखो तुम लोग यह भी नहीं जानते। बिल्लियां हम लोगों की तरह नहीं खाती, अपने खाने को मुंह के भीतर कूच या पीस नहीं सकती। इनका मुंह केवल ऊपर नीचे कैंची की नांई खुलता है। इनके मुंह के नीचे का भाग दहिने से बाएं या बाएं से दहिने हम लोगों की तरह नहीं चलता। ये चीजों को कूंचती नहीं, केवल निगल जाती है। अच्छा, एक प्रश्न और है, भला इनकी मूंछें किस काम की हैं?

लड़के फिर चुप हो रहे।

फिर बृजकिशोर ने पूछा "भला तुम लोग अँधेरे में कैसे चलते हो?"

गिरधर ने कहा "हाथ बढ़ाए चीजों को छूते हुए"

बृजकिशोर ने कहा "इसी तरह से जब बिल्लियां अंधेरे में चलती हैं तो ये अपनी मूंछों को आगे बढ़ा कर फैलाए रहती हैं और जो कोई चीज आगे मिलता है तो वह इन्हीं मूंछों में भिड़ती है, मूछों में भिड़ने पर अपने मुंह को खींच लेती है"।

लड़के सब आश्चर्य में आ हँसने लगे और बोले "हम लोग ऐसे ही और भी सब मामूली वस्तुओं के बारे में जानना चाहते हैं"। तब बृजकिशोर ने कहा अच्छा कल दस बजे आना। सवेरे हम तुम्हारे लिये और भी कई बड़ी रोचक वस्तुएं ला रक्खेंगे, परन्तु यह जो सब बातें सुनते हो, उन पर बिचारना।

## भेंड़



बृजकिशोर दूसरे दिन सुबह हो जाने के कुछ काल पीछे घर के बाहर निकल बिचारने

लगे कि लड़कों को आज कोई नई बात दिखलानी चाहिए। हवा ठण्डी बह रही थी और आकाश में छोटे छोटे बादल के टुकड़े उड़ रहे थे।

ऐसा देख उन्होंने लड़कों को बोलाया और कहा कि चलो, थोडा नदी के तट पर घूमें और कुछ नई चीजें देखें। यह सुन लड़के बहुत प्रसन्न हुए और चट उनके साथ हो लिए। उन लोगों ने थोड़ीही दूर जा एक खेत में जो घास से हरा भरा था एक झुण्ड भेड़ों का चरते देखा, उनको देख वृजकिशोर खड़े हो गए और बोले "देखो ये जीव कैसे छोटे छोटे देखने में सुन्दर हैं। तुम जानते हो ये भेड़ हैं पर ये यहां कर क्या रही हैं?"।



गिरधर ने कहा "ये चरती हैं, और घास को खाती हैं"।

तब वृजकिशोर ने पूछा "इसके सिवाय ये और क्या खातीं हैं, तुम जानते हो ?"

"नहीं"

"ये घास, पेड़ों की पत्तियां और अन्न भी खाती हैं। ये तृणभक्षक कहलाती हैं। और भी देखो, ये गोल का गोल एक साथ सोती, चरती और चलती फिरती हैं। इन्हें मैदान में अकेला न पाओगे। ये मनुष्यों की नाई बीस पचीस एक सङ्ग रहती हैं।"

तब केशव ने कहा "इन्हें हमने कभी पास से नहीं देखा है, चलिए इसके निकट चलें।

वृजकिशोर ने कहा "नहीं ये भाग जांयगीं। ये बड़ी डरपोक होती हैं। पर ठहरो, मैं, जो इनको



चरा रहा है उससे पूछ के, एक पकड लाऊंगा।"

तब वे जा गड़ेरिए से पूछ कर एक भेड़ पकड़ लाए और बोले "देखो रानी, इसकी कुल देह रोंए से ढकी है, और ये रोंए कैसे गझिन और बड़े हैं। तुम जानती हो क्यों ?"

"नहीं मैं नहीं जानती"।

"ये भेड़ जाड़े में रात भर बाहर खेतों में सोती हैं। बरसात में यदि पानी भी बरसा करै तो ये मैदान में खड़ी रहती हैं, और गरमी में धूप में चरा करती हैं। परमेश्वर ने इनको जाड़े की शीत, बरसात के पानी और गरमी की धूप से बचाने के लिये ये रोएं दिए हैं। इसी से अपने को बचाती हैं, ये कभी घर में नहीं रहतीं, यदि इनके पैरों की तरफ देखो तो ये कैसे पतले पतले बने हैं, लेकिन भला



गिरधर तुम बतलाओ तो इनके खुर में और घोड़ों के खुर में क्या भेद है ?"

गिरधर ने कहा कि "इनके खुर कटे हैं। एक एक खुर के दो दो हिस्से हैं पर घोड़ों के समूचे होते हैं"।

"वाह तुम्हारे उत्तर से तो मालूम होता है कि तुमने इनको पहिले भी देखा था, क्या तुम इनके बारे में सब कुछ जानते हो"।

उसने कहा "हां" तब वृजकिशोर ने पूछा "अच्छा बतलाओ तो इनके दांत किस तरह के हैं ग्रैार कैसे जमे हैं।"

गिरधर ने कहा "एक कतार में हम लोगों की तरह"।

वृज०—"तब तुम कुछ नहीं जानते। देखो"

ऐसा कह कर उन्होंने उस भेंड़ी का मुह खोलकर उन सभों को दिखलाया ग्रैार कहा "देखो उसके मुंह में ऊपर आगे की तरफ कोई भी दांत नहीं है, पर नीचे एक कतार में कई हैं। ऊपर केवल मांस ही मांस है ग्रैार देखो गद्दे की तरह बहुत



मुलायम नहीं है। ये लोग चरते समय घास के गुच्छे को नीचे की दांतों पर धर ऊपर के मांस के गद्दे से दबा खींच कर काट लेती हैं, परन्तु उनके चैाघड़ हमी लोगों की तरह बने रहते हैं। इन्हींकी मदद से ये खाती हैं।"

इतने में वे सब भेंड़ जो चरती थीं चरते चरते दूर चली गईं। उनकी ग्रोर देख यह चिल्लाने लगी। इसकी इस दशा को देख लड़कों को कष्ट हुआ ग्रैार उन्होंने उसे छोड़ दिया। यह मुंह को जमीन में लगा उनकी ग्रोर दैाड़ी।

ऐसा देख केशव ने अपने बड़े भाई से पूछा "कहिए तो यह मुंह को पृथ्वी के इतने निकट कर के क्यों दैाड़ती है? घोड़े, बैल, बकरी, तथा ग्रैार चारपाए तो मुंह को ऊपर करके चारों तरफ देखते दैाड़ते हैं, वे मुंह को पृथ्वी के पास इस तरफ लगा कर नहीं दैाड़ते"।

केशव ने कहा "देखो यह एक दूसरे में धंसी ग्रैार भिड़ी सदा चलती ग्रैार चरती हैं, इनको मुंह उठाकर चलने की जगह नहीं रहती, इस लिये बान पड़ जाने पर जब ये अकेली चलती हैं तो भी उसी प्रकार से मुंह जमीन में लगाए चलती हैं॥

[क्रमशः

र. द. प.

---

# राजर्षि भीष्मपितामह जी

## [ ३ ]

### भीष्म जी का घायल होना

नवें दिन प्रातःकाल संध्या आदि से निवृत्त हो भीष्म जी अपने सुन्दर रथ पर सवार हो सेना की ग्रोर चले। आगे उन्हें दुर्य्योधन मिला। दुर्य्योधन को संग ले भीष्म जी ने सेना को युद्ध के लिये उद्यत किया ग्रैार सर्वतोभद्र नामी व्यूह रच पांडव सेना पर धावा करने की आज्ञा दी। पांडवों की सेना का वीर अभिमन्यु (अर्जुन का पुत्र) पांडव दल की रक्षा कर रहा था। कैारव सेना को बरसात के जलप्रवाह की भांति आती हुई देख उसने अपने पिता के दिए हुए सुन्दर पाशुपतास्त्र पर चिल्ला चढ़ाया ग्रैार कैारव सेना को वहीं का वहीं रोक दिया। भीष्म जी यह देख अपनी सेना का उत्साह बढ़ाने के लिये आगे बढ़े। बहुत से पांडव महारथियों ने एकत्रित हो भीष्मजी को घेर लिया ग्रैार मर्मभेदी बाण इस चतुराई से मारे कि उनके अङ्ग अङ्ग से रुधिर बहने लगा। बहते हुए रुधिर से भीष्म जी ऐसे शोभायमान हुए जैसे बहते हुए झरनों से पर्वत शोभायमान होता है। बहुत से घावों के होने पर भी भीष्म जी पर्वत की भांति अचल रहे ग्रैार तनिक भी व्यथित न हुए। फिर क्रोध से उन्होंने अपने धनुष की टंकार दी ग्रैार चिल्ला चढ़ा बाणों की वर्षा करने लगे। उन्होंने इतने बाण मारे कि जिधर दृष्टि पड़ती थी बाण ही बाण दृष्टिगोचर होते थे। उन बाणों ने पांडव सेना को अधीर कर दिया ग्रैार महारथियों को घबरा दिया। अर्जुन ग्रैार सात्यकि अपनी सेना की यह दशा देख

सहायता के लिये बढ़े और उन्होंने भीष्म जी को घेर लिया। यह देख दुर्योधन ने अपने भाई दुःशासन को भीष्म जी के सहायतार्थ भेजा। भीष्म जी बड़े क्रोध में आ बाण वर्साने लगे और और दुःशासन पांडवदल को इस प्रकार काटने लगा जैसे किसान शस्य काटता है। इस बात को कृष्ण ने देख सात्यकि को दुःशासन से युद्ध के लिये कहा। सात्यकि ने कृष्ण की आज्ञा पा धृतराष्ट्र के पुत्र को मार भगाया। अब अर्जुन और भीष्म का युद्ध होने लगा। भीष्म जी के अस्त्रों को अर्जुन काटते थे और समय पा उनको घायल भी करते थे। परन्तु पितामह समझ बीच बीच में रुक जाते थे। भीष्म जी निश्चिन्त हो युद्ध कर रहे थे और थोड़ी देर में अर्जुन के रथ के इर्द गिर्द उन्होंने लाशों के ढेर लगा दिए। कृष्ण ने अर्जुन को पुकार कर कहा कि सावधान होकर युद्ध करो, नहीं तो स्मरण रखो आज भीष्म पांडवदल को बिलकुल भस्म कर देंगे। अर्जुन ने कुछ ध्यान नहीं दिया। जब कृष्ण ने देखा कि अर्जुन आज सब कोशिशों पर पानी फेरता है, तो आप रथ से उतर युद्ध के लिये उद्यत हो गए। भीष्म जी ने कृष्ण से कहा, आज आप फिर युद्ध के लिये उद्यत हुए हैं, आइए आप और मैं युद्ध करें। आप जैसे वीर के हाथ से आज मर कर जन्म सफल करूंगा। कृष्ण जी चलेही थे कि अर्जुन-ने उनको पकड़ लिया और कहा कि आप दुःख न उठाएं, मैं अवश्य युद्ध करूंगा। क्या करूं, भीष्म जी को देख उत्साह भंग हो जाता है। परन्तु नहीं, अब मैं कायर नहीं बनूंगा। आप देखेंगे कि कल क्या होगा। संध्या हो गई थी। सेनाएं अपने अपने शिविरों में चली गईं।

रात को युधिष्ठिर ने अपने भाइयों और कृष्ण जी से सम्मति पूछी कि किस प्रकार भीष्म जी की मृत्यु हो। हमने इतना यत्न किया परन्तु वह सब निष्फल हुआ जाता है। भीष्म जी के होते हमारी जय होनी कठिन है। कौन वीर है जो भीष्म जी को संग्राम में घायल करे। कृष्ण जी बोले कि मैं भीष्म का रण में वध करूंगा। युधिष्ठिर ने कहा यह नहीं हो सकता, मैं आपको युद्ध करने के लिये नहीं कह सकता। अन्त को सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि भीष्म जी के पास चलना चाहिए और उनसे इस विषय में सम्मति लेनी चाहिए।

युधिष्ठिर अपने भाइयों और कृष्ण को साथ ले भीष्म जी के शिविर की ओर चले। वहां पहुंच सब से पहिले सबने भीष्म जी को प्रणाम किया और फिर शिर झुका कुरसियों पर बैठ गए। भीष्म जी ने राजा युधिष्ठिर और उसके भाइयों का स्वागत किया और आने का कारण पूछा। युधिष्ठिर बोले "हे पितामह! आपने कहा था कि तेरी जय होगी; परन्तु अब तक मेरी दो अक्षौहिणी सेना मर चुकी हैं। कहिए मुझे कैसे जय प्राप्त होगी"। भीष्म बोले "हे राजन्! जब तक मेरे शरीर में बल है तब तक तुझे जयलाभ नहीं हो सकता"। युधिष्ठिर ने कहा "आपने कहा था कि फिर आना, तुमको बतलाऊंगा कि किस प्रकार जीत होगी। कृपा करके बतलाइए कि आपको मेरी सेना कैसे पराजित कर सकती है। आपने कहा था कि मैं केवल सम्मति दे सकता हूं, युद्ध नहीं कर सकता, सो कृपा कर अपने बचनों को पूरा कीजिए"।

भीष्म बोले "हे राजन्! ध्यान से सुनो। जब मैं शस्त्ररहित होऊं तभी कोई मुझे मार सकता है और उस आदमी पर जिसने शस्त्र रख दिए हों, नीचे गिर गया हो, डरा हुआ हो, जो कहें 'मैं शरण आया हूं', स्त्री हो या जिसमें स्त्रियों के गुण हों, जिसके एक ही पुत्र हो और जो अज्ञानी हो, ऐसे पुरुषों से मैं नहीं लड़ता" इन बातों से प्रतीत होता है कि उस ज़माने में दूसरे की निर्बलता से किसी प्रकार की स्वार्थसिद्धि का ढंग इस देश में प्रचलित न था। युधिष्ठिर पितामह जी की आज्ञा ले अपने शिविर को लौट आए और सो रहे।

दसवें दिन युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा कि वीरता से युद्ध करो। पितामह जी को देख ढीले न बन जाया करो। क्या तुम अपना प्रण भूल गए? स्पष्ट

कहो, यदि तुम युद्ध से भागते हो तो मैं कोई और प्रबन्ध करूं'। बड़े भाई के ये शब्द सुन अर्जुन के रोम खड़े हो गए और शरीर पसीने से भर गया। वे हाथ जोड़कर बोले महाराज! आज मैं भीष्मजी को रण में घायल करूंगा, पिछला अपराध क्षमा कीजिए। कृष्णजी ने भी समझाया कि तुम लुटेरे होकर नहीं लड़ते हो, अपने कर्तव्यपालन के निमित्त युद्ध करते हो, किसीका भाग नहीं छीनते, युद्ध में जो कोई आवे उससे लड़ो, चाहे वह पिताही क्यों न हो, अपना अधिकार लेना क्षत्री का धर्म है। कृष्ण के उत्साह और युधिष्ठिर के शब्दों ने अर्जुन को युद्ध के लिये उद्यत किया और वह क्रोध से अपने प्यारे अस्त्र गांडीव को बार बार टंकोर देने लगा, जिसके शब्द से चारो दिशाएं गूंज उठीं। थोड़ी देर में दोनों सेनाएं युद्ध के लिये मिल पड़ीं। अर्जुन भीष्म जी के बध के लिये उद्यत था, इस लिये युद्ध का भयङ्कर रूप हो गया। दोनों ओर के वीर मार मार कर रहे थे और निर्जीव देहें गिर रहीं थीं। अर्जुन ने सेना सहित भीष्म जी को घेर लिया और बड़ाही यत्न किया कि मार डाले, परन्तु कुछ न कर सका। भीष्म जी ने राजा विराट के भाई को अपने खड्ग से चीर दिया और कुछ समय तक ऐसा प्रतीत होता था कि कौरव जीत जांयगे। उस समय किसीने भीष्म जी को दया करने के लिये कहा, जिसपर वे बोले 'नहीं, पाप नहीं करूंगा, कोई वीर है तो युद्ध करे'।

दूसरी बेर जब पांडवों की सेना के पांव उखड़ गए और वह भागने पर उद्यत हुई, तो युधिष्ठिर ने अपनी सेना को ललकारा और कहा कि वीरो बढ़ो, वृद्ध भीष्म अर्जुन का सामना नहीं कर सकता। निदान पांडवों की सेना ने फिर एक बार साहसकर धावा किया, कौरव भी भीष्म की रक्षा के लिये इधर उधर फैल गए और निराश हो युद्ध करने लगे। अर्जुन ने दो बार भीष्मजी का धनुष तोड़ डाला। भीष्म भाले से लड़ने लगे, अर्जुन ने वह भी तोड़ दिया। भाले के टूटने पर उन्होंने खड्ग और ढाल उठाई और सम्मुख हो युद्ध करने लगे। अर्जुन ने खड्ग भी तोड़ दिया। उन्होंने फिर धनुष से युद्ध करना आरम्भ किया। निदान ऐसा युद्ध हुआ कि अपने पराये की पहचान न रही। पांडवों ने मस्त हाथी भीष्म जी पर रेले, भीष्म जी ने उनको मार शरीर काट डाला। पांडवों ने पण कर लिया कि आज भीष्म जी को मारे बिना रण से मुख न मोड़ेंगे। बड़ी देर के युद्ध के पीछे भीष्म जी अर्जुन और शिखंडी के बाणों से घायल हो भूमि पर गिर पड़े। यद्यपि महाभारत के कर्ता ने शिखंडी को स्त्री कह कर भीष्म जी के युद्ध न करने पर अर्जुन का उनको घायल करना लिखा है, परन्तु चाहे कुछ ही हो, भीष्म जी इस दिन युद्ध में बहुत घायल होगए और कौरव उनको उठा शिविर में ले गए। दोनो ओर से युद्ध बन्द हो गया। भीष्म जी के शरीर में इतने बाण लगे थे कि भूमि से ऊंचा शरीर हो गया। परन्तु वाहरे वीर! मुंह से हाय तक नहो निकाली। यह तेराही साहस था! वाहरे ब्रह्मचारी! सच है, ब्रह्मचर्य्य से क्या नहीं हो सकता। धन्य है वह पुरुष जो ब्रह्मचर्य्यव्रत को धारण करते हैं। परमात्मा हमारे देश में फिर उन्हीं सिद्धान्तों का प्रचार करे जिसमें ऐसे कर्तव्य पालनेवाले सहनशील क्षत्री उत्पन्न हों! भीष्म जी शरों की शय्या पर पड़े थे, परन्तु सिर लटक रहा था। उन्होंने कहा कि कोई है वीर जो तकिया देवे। मूर्ख रेशमी तकिए ले ले कर दौड़े। भीष्मजी हँसे और उन्होंने अर्जुन की ओर, जो अपने भाइयों सहित वहां उपस्थित था देखा, अर्जुन पितामह जी का अभिप्राय समझ गया। उसने तीर मार सिर भूमि से ऊंचा कर दिया।

### भीष्मपितामह जी का उपदेश और उनकी मृत्यु

वीर क्षत्री शरों की शय्या पर पड़ा है। सब चारों ओर बैठे हैं। एक ओर युधिष्ठिर हाथ बांधे पितामह की सेवा के लिये उपस्थित हैं। दो घंटे पहिले जो यह चाहता था कि कब अर्जुन का तीर

लगे और राजर्षि गिरे, वही युधिष्ठिर इस समय इस सोच में है कि पितामह का दुःख कैसे दूर हो। क्यों न हो! अवस्था में भेद पड़ गया। वह अवस्था रणभूमि की थी और यह अवस्था पैतृक सम्बन्ध की है। वाहरे भारत! यदि उन्नति भी की थी तो कहां तक! एक वह समय कि तैने ऐसे पुत्र उत्पन्न किए जो प्रत्येक धर्म के समझनेवाले, अवसर से कदापि न चूकनेवाले, तथा कर्तव्य की महानता को समझने वाले थे। और एक यह अवस्था होगई कि भारतवासी धर्म को जीवन से ही पृथक समझने लगे। कर्तव्य (Duty) जानते ही नहीं कि किस चिड़िया का नाम है। मुख्य सिद्धांत यह बनाया–

खाओ पीओ और मस्त रहो

हा! काल की विचित्र लीला है।

दूसरी ओर दुर्य्योधन शोकग्रस्त आंखों में आंसु भरे नीचा सिर किए आज्ञा के लिये खड़ा है। भीष्म जी ने दृष्टि उठा सबकी ओर देखा, फिर दुर्य्योधन से बोले, शोक मत करो, यह संसार असार है, इस जीवन का अन्त मृत्यु है और शरीर का अन्त भस्म होना है, क्योंकि वेद कहता है।

भस्मांतङ् शरीरम्॥ यजु०

इस जीवन के परिणाम से कोई पुरुष नहीं बच सकता। धन्य है वह पुरुष जो धर्म पालन करता हुआ जीवन व्यतीत करता है। हे दुर्य्योधन मैंने तुम को बहुत समझाया है। अब फिर समझाता हूं। तू पाप के मार्ग को छोड़ धर्मपथ पर चल। पांडवों को उनका भाग दे दे और युद्ध को छोड़ दे। देख, तू धर्मपुत्र युधिष्ठिर पर विजय नहीं पा सकेगा, क्योंकि 'यतो धर्मस्ततो जयः' यह शास्त्र बार बार पुकार कर कहते हैं। अर्जुन सा वीर कैारवों में एक नहीं है देखा मान जा, हठ न कर इसका परिणाम तेरे लिये बहुत बुरा होगा। तेरी सेना, तेरे भाई, सब भीम के हाथ से मारे जायंगे। क्यों संसार में कलङ्क का टीका लेता है? स्मरण रख यह समय फिर हाथ नहीं आवेगा। भीष्म जी ने दुर्य्योधन को बहुत समझाया, परन्तु गोसांई तुलसी दास जी ने सत्य कहा है–

फूलें फलें न बेत यद्यपि सुधा बर्षहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत जैा गुरु मिलहि बिरंचिसम॥

ऐसे नाज़ुक समय में एक राजर्षि के मुख से निकला हुआ उपदेश भी उसके चित्त पर कुछ असर न कर सका। वह वहां से चला गया। सब राजा लोग भीष्म जी से आज्ञा ले अपने अपने स्थानों पर चले गए और भीष्म जी आंखें मूंद ध्यानस्थित होगए।

कर्ण ने, जो कि सदा भीष्म जी से विरोध किया करता था और उन्हीं के कारण युद्ध में शामिल नहीं हुआ था, जब यह सुना कि भीष्म जी घायल हो शरशय्या पर पड़े हैं तो वह भी उनके दर्शनों को आया। भीष्म जी उस समय समाधि में थे। कर्ण ने आकर उनके पैर पकड़ लिए और आंखों में आंसू डबडबा कर कहा कि मैं कर्ण आपके दर्शनार्थ आया हूं और आपके चरणों में उपस्थित हूं। भीष्म जी ने धीरे धीरे आंखें खोल दीं और कर्ण को देख उसके शिर पर हाथ रख प्रेम से बोले "बेटा, तुमने अच्छा किया जो इस समय मेरे पास चले आए। मुझे तुमसे कोई विरोध नहीं। मैं सत्य कहता हूं कि मैंने सदा तुम्हारे हित के बचन कहे हैं, यदि मैंने कभी कोई कटु बचन भी कहा तो वह केवल तुम्हारे जोश की शान्ति के लिये, क्योंकि तुम सदा पांडवों की निंदा किया करते थे। जिन लोगों में तुम्हारा बैठना उठना है, उनके विचार बहुत भद्दे हैं। कुसंगत ने तुम्हें घमंडी बनादिया है और तुम धर्म अधर्म का विचार नहीं करते। मैं जानता हूं कि तुम शूर हो, वाण फेंकने में तुम अर्जुन से कम नहीं हो, परन्तु तुम्हें चाहिए कि तुम पांडवों से शत्रुता छोड़ दो; इन्हें अपना भाई समझ द्वेष त्याग दो। दुर्य्योधन तुम्हारा कहा मान लेगा। फूट का परिणाम अच्छा नहीं है। कर्ण बोला "मैंने दुर्य्योधन से प्रण किया है और उसका पक्ष लेकर युद्ध करने का विचार किया है। अब मैं उस विचार से नहीं हट सकता। आप मुझे आज्ञा दें कि मैं क्षत्री की मृत्यु

(रण में) मरूं। मेरे अपराधों को क्षमा करना। भीष्म बोले "अच्छा, मेरा धर्म था मैंने समझा दिया, अब तुम स्वतन्त्र हो"। भीष्म जी की आज्ञा ले कर्ण दुर्य्योधन के पास चला गया।

भीष्म जी के घायल होने के बाद आठ दिन तक कौरव और पांडवों का घोर युद्ध होता रहा। अन्त को पांडवों की जीत हुई और दुर्य्योधन के भाई और ११ अक्षौहिणी सेना सब मारी गई। जब युधिष्ठिर के राज्य सिंहासन पर बैठने का समय आया तो उनके मन में न जाने क्या आया कि वह राज पाट छोड़ कर आश्रम बदलने के लिये उद्यत हो गए। कृष्ण जी और अर्जुन ने बहुत समझाया। परन्तु उनके चित्त पर कुछ असर न हुआ। अन्त में कृष्ण जी ने युधिष्ठिर को कहा कि तुम भीष्म जी से, जो इस समय के विद्वान और पूर्ण योगी हैं, जाकर इस विषय में सम्मति लो। और उनकी मृत्यु भी निकट है, इस लिये उनके जीवन से यथाशक्ति लाभ उठाओ। युधिष्ठिर जी ने इसे स्वीकार किया। अपने भाइयों और बाकी सम्बन्धियों को संग ले वे भीष्म जी के पास गए। उस समय भीष्म जी ने युधिष्ठिर को जो उपदेश किया है वह महाभारत के शांति और अनुशासन पर्व में है। मैं उसमें का कुछ भाग पाठकों के लाभ के लिये लिखता हूं। कृष्ण जी भीष्म जी से पूछते हैं—

कच्चित्सुखेन रजनी व्युष्टात्ते राजसत्तम।
विस्पष्टलक्षणा बुद्धिः कच्चिचोपस्थिता तव॥

हे कुरुश्रेष्ठ! आप विमलमति किस कारण से हैं? वह कौन सा प्रभाव है जिससे आपको इस बाणशय्या पर किञ्चित्मात्र भी कष्ट नहीं होता?

कच्चिज्ज्ञानानि सर्वाणि प्रतिभाति च तेऽनघ।
न ग्लायते च हृदयम् न च ते व्याकुलम् मनः॥

और किस कारण से आपका ज्ञान प्रदीप की तरह दीप्तिमान हो रहा है? आपका हृदय किसी कारण से भी ग्लानि को प्राप्त नहीं होता, आपका मन प्रसन्न है, इसका क्या कारण है?

भीष्म जी उत्तर देते हैं—

यच्चभूतम् भविष्यच्च भवच्च परमद्युते।
तत्सर्वमनुपश्यामि पाणौ फलमिवार्पितम्॥

हे कृष्ण! वैदिकधर्म की कृपा से मुझे कोई संशय नहीं। हस्तामलक की भांति धर्माधर्म सब प्रतीत होता है, इससे मुझको क्लेश नहीं होता।

वेदोक्ताश्चैव ये धर्मा वेदान्ताधिगताश्च ये।
तान् सर्वान् संप्रपश्यामि वरदानात्तवाच्युत॥

आप की कृपा से मैं वेद वेतान्तों के सब धर्मों को जानता हूं जिससे मुझे क्लेश नहीं होता।

चतुर्ष्वाश्रमधर्मेषु योऽर्थः स च हृदिस्थितः।
राजधर्मांश्च सकलानवगच्छामि केशव॥

चारों आश्रमों के धर्म और राजधर्म को मैं जानता हूं। भाव यह है कि राजधर्म के धारण से भी मुझे काया क्लेश नहीं है।

अब यह विचार उत्पन्न होता है कि वेद वेदान्तों का कौनसा धर्म है, जिससे अभिज्ञ हो कर मनुष्य दुःख को धैर्य्य से सहन कर सकता है। वह कौनसी अग्नि है जो इतने कष्ट के होने पर भी मनुष्य के तेज को बनाए रखती है। राजधर्म क्या है जिसको जानता हुआ पुरुष शान्ति से शरों पर लेट सकता है? वह ऐसा क्या बल है जो मनुष्य की आत्मा को ऐसा बलवान बना देता है। सज्जनो! जिन्होंने ईश्वरीय ज्ञान वेद को नहीं जाना, जिन्होंने शास्त्र मर्य्यादा छोड़ दी, जो सांसारिक विषयों को ही जीवन का उद्देश्य मानते हैं। परन्तु जो शास्त्रों को पढ़ते और श्रवण करते हैं वे जानते हैं—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-
न्यानि संयाति नवानि देही॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति॥"

युधिष्ठिर जी को राजर्षि भीष्म जी क्षात्रधर्म का उपदेश करते हैं–

अधर्मः क्षत्रियस्यैषः यच्छय्या मरणं भवेत ।
विसृजन् श्लेष्ममूत्राणि कृपणं परिदेवयन् ॥
अविक्षितेन देहेन प्रलयं योऽधिगच्छति ।
क्षत्रियो नास्य तत्कर्मप्रशंसन्ति पुराविदः ॥
न गृहे मरणं तात क्षत्रियाणां प्रशस्यते ।
शौंडीराणामशौंडीर्य्यमधर्म्यं कृपणं च तत् ॥
शा० राज० अ९७, २३, २४, २५

हे युधिष्ठिर! क्षत्रिय के लिये यही अधर्म है कि शय्या में बीमार हो कर कृपणता के साथ मरे। जो क्षत्रिय क्षतरहित अर्थात् बिना घाव के शरीर वाला मरता है, उसको प्राचीन क्षत्रियलोग क्षत्रिय नहीं गिनते थे। गृह में मरना क्षत्रियों का धर्म नहीं। उस उच्चभाव वाले क्षात्रधर्म को रखते हुए क्षत्रिय क्षतों से क्या भय करते थे? इसी भाव का भरोसा था। इसी धर्म की सत्ता थी, जिसके कारण भीष्मपितामह जी बाणशय्या को पुष्पशय्या समझते थे। इसी विद्युतवत् शक्ति के बल से वह शरशय्या पर लेटे हुए भी शान्तिसुधारूप वचनों का उपदेश करते रहे। आज चाहे भीरु और कायर पुरुष भी क्षत्री कहलाने का दम भरें, इस समय जब कि कोई पूछने वाला नहीं चाहे इन्द्रियों के सेवक, सदा भोग की इच्छावाले मनुष्य अपने आपको क्षत्री कहें, परन्तु क्या वे शास्त्र के आज्ञानुसार क्षत्री कहला सकते हैं? कदापि नहीं।

सर्वधर्म्मपरं क्षात्रं लोकश्रेष्ठं सनातनम्।
शश्वदक्षरपर्य्यन्तमक्षरम् सर्वतोमुखम् ॥

सब धर्मों से उच्च, श्रेष्ठ और सनातन यह क्षात्रधर्म है, निश्चयपूर्वक मुक्ति का देने वाला है, सच्चा है और धर्म्मार्थकामादि सब फलों का देनेवाला है। क्षात्रधर्म्म में प्रजा की रक्षा करनी होती है और देश में शान्ति और सुप्रबन्ध करना होता है, जिसका परिणाम धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि है, क्योंकि जब तक किसी देश में क्षत्रियों का बल नहीं बढ़ता, अर्थात् सच्चे क्षत्री उत्पन्न नहीं होते, तब तक वह देश कदापि भी ऐश्वर्य्य और समृद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता। किसी देश के इतिहास को पढ़िये, जब जब वहां क्षात्रधर्म के जानने वाले और न्यायपूर्वक शस्त्र के उठानेवाले योधा उत्पन्न हुए हैं, तब तब वह देश उन्नति करता रहा है। क्षत्री प्रबन्ध कर सकते हैं, दुष्टों को दण्ड देना उनका धर्म है, कोई किसीको सताये नहीं, सब अपने कार्यों को करते हुए आनन्द से रहें, ऐसा प्रबन्ध रखना उनका कर्तव्य है। जब ऐसा प्रबन्ध हो जाता है तो देश में धन बढ़ता है। लोग धर्म करते हैं और अन्त को मोक्ष को प्राप्त होते हैं। तभी वैशेषिक के कर्ता धर्म का लक्ष करते हुए कहते हैं—

यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धि स धर्म्मः

जिससे अभ्युदय और निश्रेयस की सिद्धि है वही धर्म है। ऋषियों ने जिस बात को लिखा है, उसे उन्होंने योगबल से भली प्रकार जान कर लिखा है।

आगे शान्तिपर्व में राजधर्म की व्याख्या करते हुए लिखते हैं।

त्याग श्रेष्ठं मुनयो वै वदन्ति
सर्वश्रेष्ठं यच्छरीरं त्यजेत
नित्यं युक्ता राजधर्मेषु सर्वे
प्रत्यक्षंते भूमिपाला यथैव ॥

मुनि लोग सबसे श्रेष्ठ त्याग को कहते हैं। सब से बड़ा त्याग वह है जिसमें तन का त्याग किया जाता है। इस प्रकार त्याग क्षत्रियलोग राजधर्म पालनार्थ करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि क्षात्र धर्म सबसे श्रेष्ठ है। पुरुषोत्तम! तुम इस धर्म को ग्रहण करो। फिर युधिष्ठिर को भीष्म जी कहते हैं–

उत्थानेन सदा पुत्र प्रयतेथा युधिष्ठिर
नह्युत्थान मृते दैवं राज्ञामर्थं प्रसाधयेत्

हे पुत्र! पुरुषार्थ पर निर्भर करके सदा यत्न करना चाहिए। पुरुषार्थ के बिना राजाओं का कोई

भी अर्थ सिद्ध नहीं होता। जो पुरुष उद्योग को छोड़ सदा भाग्य पर पड़े रहते हैं, वे कभी भी किसी कार्य्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि संसार में देखा जाता है कि छोटे छोटे कीड़े भी जो उद्यम करते हैं वेही भविष्यत् के लिये सुख की सामग्री इकट्ठा कर अपना समय आनन्द से व्यतीत करते हैं। परन्तु जो आलसी हैं वे सदा भूखे पड़े पड़े रेंगा करते हैं।

इसलिये भीष्म जी पुरुषार्थ का उपदेश करते हैं और फिर आगे कहते हैं–

साधारणं द्वयंह्येतद्दैवमुत्थानमेवच
पौरुषं हि परं मन्ये दैवं निश्चितमुच्यते ॥

पुरुषार्थ और दैव ये दोनों कारण हैं, परन्तु इन दोनों में से पुरुषार्थ ही मुख्य है। क्योंकि दैव भी पुरुषार्थ से किए हुए कर्मों के फल का नाम है और वह कर्म पिछले जन्मों के हैं। इस जन्म में जो हम शुभ या अशुभ कर्म करेंगे, वेही दूसरे जन्म में दैव कहलाएंगे। इसलिये मनुष्य को चाहिए कि सदा शुभ कर्म करता रहे।

विपन्ने च समारंभे संतापमास्म वै कृथाः
घटस्वैव सदात्मानं राज्ञामेष परोनयः।

राजाओं की परम नीति यही है कि जब कोई विपत्ति का काम आ पड़े तो संताप न करें, किन्तु अपने आप को पुरुषार्थी बनावें।

इस प्रकार भीष्म पितामह जी ने युधिष्ठिर को बहुत कुछ राज्यधर्म के विषय में उपदेश दिया। जब राज्यधर्म का उपदेश सुन चुके, तो युधिष्ठिर जी ने फिर भीष्म जी से पूछा कि मोक्ष की प्राप्ति के साधन क्या हैं यह कृपा करके कहिए। भीष्म जी बोले–

यस्यवाङ् मनसि स्यातां सम्यक् प्रणिहिते सदा
तपस्त्यागश्च सत्यंच सवैं सर्वमवाप्नुयात् ॥ ३४

जो पुरुष चक्षु श्रोत्र आदि ज्ञान इन्द्रियों को सदा उत्तम उत्तम विचारों में लगाते हैं, कभी कुचेष्टाओं में नहीं फसते, और उनको अपने अधीन रखता है, और जिस पुरुष के तप त्याग एवम् सत्य ये तीन साधन हैं, वह पुरुष मोक्ष रूपी आनन्द को प्राप्त होता है।

नास्ति विद्या समं चक्षुः नास्ति सत्य समं तपः
नास्ति राग समं दुःखं नास्ति त्याग समं सुखः॥ ३५

वे पुनः कहते हैं कि विद्या के समान दूसरा नेत्र नहीं, सत्य के समान दूसरा तप नहीं, राग के समान दूसरा दुःख नहीं और त्याग के समान दूसरा सुख नहीं है। सच है जो मूर्ख पुरुष हैं वे कभी भी इन्द्रियों को वश करने के साधनों अथवा अन्य योग के अंगों को नहीं समझ सकते, क्योंकि बिना विद्या के बुद्धि खुलती नहीं, बुद्धि में प्रकाश नहीं होता। जैसे अंधेरे घर में दिये के आतेही प्रकाश हो जाता है और सब पदार्थ देख पड़ने लगते हैं, उसी प्रकार विद्या बुद्धि का प्रकाश है। सत्य व्रत पालन करने के समान कोई तप नहीं, सत्य बोलना, सत्य कहना और सत्य करना यह महान तप है, केवल इसी तप के बदले हरिश्चन्द्र संसार में चन्द्र की भांति देदीप्यमान हैं, और मिथ्या राग के समान कोई दुखप्रद पदार्थ नहीं। इसलिये, हे युधिष्ठिर! यदि तू उस शांतिधाम को करना चाहता है तो उन साधनों से मार्ग को साफ करे। फिर युधिष्ठिर जी बोले–

अनेकान्तं बहुद्वारम् धर्म्ममाहुर्मनीषिणः
किं निश्चितं भवेदत्र तन्मे ब्रूहि पितामह ॥

अनु० २२ अध्याय

महात्मा लोगों ने धर्म्म के बहुत से द्वार बतलाए हैं। हे पितामह, आप कहिए कि उनमें से कौन मुख्य हैं।

भीष्म जी बोले—

अहिंसा सत्यमक्रोध आनृशंस्यं दमस्तथा
आर्जवञ्चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्मलक्षणम् ॥

सब प्राणियों को अपने तुल्य समझ दुःख न देना, सदा मन, वाणी और कर्म से सत्य बोलना, क्रोध का त्याग, क्रूरता को दूर करना, इन्द्रियों का

दमन, और नम्रता, हे राजाओं में श्रेष्ठ, धर्म के मुख्य लक्षण येही हैं। युधिष्ठिर जी ने फिर प्रश्न किया-

कीदृशाः साधवो विप्राः केभ्यो दत्तं महाफलम्
कादृशानांच भोक्तव्यं तन्मे ब्रू हि पितामह।
अनु० २२

हे पितामह! कौन से विप्र श्रेष्ठ हैं जिनको देने का बड़ा फल है। किन को श्रद्धा से भोजन खिलाना चाहिए. सो कृपा कर कहो।

भीष्म—

अक्रोधनाः धर्मपराः सत्यनित्या दमेरताः
तादृशाः साधवो विप्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्

क्रोधरहित, धर्मपरायण, सत्यवादी, इन्द्रिय-संयमी इन गुणों से युक्त जो विप्र हैं वे श्रेष्ठ हैं और उनको देना बड़ा पुण्य है।

अमानिनः सर्वसहा दृढार्था विजितेन्द्रियाः।
सर्वभूतहिता मैत्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम्॥
अनु० २२

मान को न चाहनेवाले, सहनशील, धर्म में दृढ़, जितेन्द्रिय सब प्राणियों के हित को चाहने वाले, सब के मित्र, ऐसे पुरुषों को दान देने से बड़ा फल है।

आगे अनुशासन पर्व के १०८वें अध्याय में राजा युधिष्ठिर जी फिर पूछते हैं-

यद्वरं सर्वतीर्थानां तन्मे ब्रूहि पितामह
यत्रचैव परं शौचं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि

हे पितामह! सब तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ कौन सा है और आप यह भी कहें कि पवित्रता किस तरह होती है?

अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्यमालम्ब्य शाश्वतम्।

मनुष्य को उचित है कि मनरूपी तीर्थ में स्नान करे। उस तीर्थ में क्या होना चाहिए? धृति रूपी तालाब। उस तालाब में जल कैसा होना चाहिए, सत्यरूपी अगाध निर्मल और शुद्ध जल हो। उस तीर्थ में स्नान करता हुआ पुरुष निरन्तर सत्य का अवलम्बन करे।

मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञान जलेन च
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत् स्नान तत्वदर्शिनाम्।

प्रकाशित मन से और ब्रह्मज्ञान रूपी जल से युक्त। मानस तीर्थ में जो पुरुष स्नान करता है, बुद्धिमान उसीको स्नान करना ठीक मानते हैं।

युधिष्ठिर फिर पूछते हैं-

ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते।
अहिंसालक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्य दर्शनात्॥
कर्मणा मनुजः कुर्वन् हिंसां पार्थिवसत्तम
वाचा च मनसाचैव कथं दुःखात् प्रमुच्यते॥
अनु० प० ११४

ऋषि, ब्राह्मण और ज्ञानवान लोग वेद शास्त्र के प्रमाणों से अहिंसा की बड़ी प्रशंसा करते हैं। किस प्रकार मन वाणी और कर्म से हिंसा करने-वाला दुख से छूट सकता है?

भीष्म—

पूर्वन्तु मनसा त्यक्त्वा तथावाचाथ कर्मणा
न भक्षयति यो-मांसं त्रिविधिं स विमुच्यते॥

पहिले मन से फिर वाणी और फिर कर्म से त्याग कर जो पुरुष मांस को नहीं खाता, वही तीन प्रकार के पापों से बचता है। [ क्रमशः

एक विद्यार्थी।

---

# ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

[ पूर्व प्रकाशित के आगे ]

## विद्यासागर की साहित्यसेवा

प्यारे पाठको! सरस्वती के अगस्त के अङ्क में आपलोग हमारे चरित्रनायक को सर्कारी नौकरी छोड़ कर देशसेवा की प्रतिज्ञा करते देख चुके हैं। अब उन्होंने अपना वचन किस तरह निबाहा वह भी देख लीजिए।

वर्तमान बंगला भाषा विद्यासागर की बहुत कुछ ऋणी है। इस भाषा को सरल सुबोध कर

सर्वाङ्गपूर्ण करने वाले ये ही हैं। अधिक क्या कहें इन्हें Father of Bengali Literature (बंगला भाषा के पिता) कहना अनुचित न होगा। इनके पहिले यह भाषा बिलकुल अपूर्ण थी। छोटे छोटे बच्चों के पढ़ने लायक कोई पुस्तक न थी, तथा बंगला साहित्य के अन्य सब ग्रन्थ भी ऐसे कठिन थे कि उन्हें बंगला का ग्रन्थ न कह कर संस्कृत का ग्रन्थ कहना उचित है। सबसे पहिले इन्होंने बंगला गद्य में वासुदेवचरित्र लिखा। इसके पीछे सन् १८४७ ईस्वी में संस्कृत की बैतालपचीसी का बंगला में अनुवाद किया। यह अनुवाद बहुत ही उत्तम हुआ और भाषा के विचार से यह विद्यासागर की सर्वोत्कृष्ट रचना है। बड़े बड़े पण्डितों ने इस पुस्तक की प्रशंसा की है। इसके पीछे सन् १८४८ ईस्वी में मार्शमैन साहब के इतिहास के आधार पर इन्होंने बंगाल में अङ्गरेजी अमलदारी से ले कर अपने समय तक का एक इतिहास लिखा। यह इतिहास बहुत दिनों तक बंगाल के वर्नाक्यूलर श्रेणियों में पढ़ाया जाता था। इसके सिवाय इन्होंने सन १८५० ईस्वी में Chamber's Biography नामक पुस्तक का तर्जुमा कर जीवनचरित्र नामक एक पुस्तक बनाई, तथा सन् १८५१ ईस्वी में Chamber's Rudiments of Knowledge के आश्रय पर बोधोदय नामक पुस्तक लिखी। इसकी भाषा बड़ी सरल है और आज तक यह पुस्तक बङ्गाल प्रान्त के स्कूलों में पढ़ाई जाती है। ईस्वी सन् १८५५ में महाकवि कालिदास कृत शकुन्तला नाटक के आधार पर इन्होंने शकुन्तला नाम का एक अति सुन्दर बंगला उपन्यास लिखा। इसकी भाषा ऐसी सरल और मनमुग्धकारिणी है कि एक बेर पुस्तक हाथ में उठाने पर बिना समाप्त किए उसे छोड़ने का जी नहीं चाहता। इसी वर्ष इन्होंने बिधवाविवाह विषयक पहिली पुस्तक लिख कर प्रकाशित की। इस पुस्तक के प्रकाशित करने से क्या क्या उत्पात हुए इसका ब्योरा आगे लिखा जायगा। सन् १८६० में इन्होंने महाभारत का बंगला अनुवाद करने का विचार किया, परन्तु किसी कारण से केवल उपक्रमणिका मात्र छप सकी। यह उपक्रमणिका ऐसी अच्छी हुई है कि उसे देखकर सहज ही में अनुमान हो सकता है कि यदि सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखा जाता तो बंगला गद्य का वह एक अपूर्व ग्रन्थ होता।

सन् १८६२ ईस्वी में "सीतार बनवास", १८६८ में आख्यानमञ्जरी, १८६९ में व्याकरणकौमुदी, १८७० में सटीक मेघदूत और रोग की अवस्था में वर्द्धमान रहते समय Comedy of Errors का अनुवाद कर भ्रान्तिविलास नामक ग्रन्थ बनाया। इनके व्याकरण की उपक्रमणिका बनाने का हाल पहिले लिखा जा चुका है। यों तो सब मिला कर इन्होंने ५२ ग्रन्थ लिखे और अनुवाद किए, परन्तु उनकी विद्या बुद्धि और अनुभव का परिचय विधवाविवाह विषयक ग्रन्थ से मिलता है। इसके सिवाय कुलीन ब्राह्मणों के बहुविवाह का दोष दिखा कर इन्होंने कई छोटी छोटी पुस्तकें लिखी हैं। इनकी पुस्तकों में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। एक तो इनकी भाषा बड़ी सरल और मधुर है और दूसरे बंगला भाषा में विराम चिन्ह इत्यादि की चाल इन्हीं ही ने सब से पहिले चलाई। उस समय के प्रसिद्ध पत्र बङ्गदर्शन, तत्वबोधिनी, सोमप्रकाश इत्यादि सामयिक पत्रों में इनके लेख प्रायः ही रहा करते थे, यहाँ तक कि पत्रों की भाषा का भी सुधार इन्हीं से हुआ। इनकी साहित्य चर्चा से बंगला गद्य की काया ही पलट गई।

## विद्यासागर का स्त्रीशिक्षा से प्रेम

बङ्ग ललनाओं के परम मित्र बङ्गाल एजुकेशनेल काउन्सिल के भूतपूर्व सभापति ड्रिङ्कवाटर बेथ्यून साहब हमारे चरित्रनायक के परम मित्र थे। इन दोनों मित्रों को परस्पर स्त्रीशिक्षा के विषय में बहुत कुछ सहायता मिलती थी। विद्यासागर स्त्रीशिक्षा के कैसे प्रेमी थे यह पहिले ही दिखलाया जा चुका है, क्योंकि बङ्गाल प्रान्त में बहुत सी कन्या पाठशाला

स्थापित करने पर जब उन पाठशालाओं के ख़र्च का बिल डाइरेकृर यङ्ग साहब ने स्वीकार नहीं किया, तब इन्हें अपने पास से रुपए उधार ले कर उन पाठशालाओं को चलाना पड़ा। इस काम में उन्हें कई सदाशय अंग्रेज़ मित्रों से भी सहायता मिलती थी।

सन् १८६६ ईस्वी में जब अबलाहितैषिणी मिस कार्पेन्टर कलकत्ता में आईं, तो विद्यासागर से भेंट कर बड़ी प्रसन्न हुईं और शीघ्र ही दोनों में घनिष्ट मित्रता हो गई। एक दिन का ज़िकर है कि कुमारी कार्पेन्टर के कहने से ये दो अङ्गरेज़ों के साथ किसी ग्राम की कन्यापाठशाला को देखने जा रहे थे। आगे गाड़ी में दो अंग्रेज़ अफ़सरों के साथ ये और पीछे एक गाड़ी में मिस कार्पेन्टर आ रही थीं। संयोगवश कहीं मोड़ घूमते समय विद्यासागरवाली गाड़ी उलट गई और विद्यासागर गाड़ी से छटक कर पेट के बल भूमि पर जा गिरे और गिरते ही बेहोश हो गए। पीछे से जब मिस कार्पेन्टर की गाड़ी आई और उन्होंने हमारे चरित्रनायक की यह दुर्दशा देखी तो चट गाड़ी खड़ी करवा कर उतर आईं और वहीं मार्ग में बैठ कर विद्यासागर का सिर गोदी में ले रूमाल से हवा करने लगीं। होश आने पर उन्हें गाड़ी में बैठा कर घर पहुंचवा दिया। इस दैवी दुर्घटना से हमारे चरित्रनायक के गुर्दे में बड़ी सख़्त चोट आ गई, जिस कारण से वे सदा शय्याग्रस्त रहने लगे। यद्यपि बीच बीच में उनकी तबियत अच्छी हो जाती थी, परन्तु रोग जड़ से न छूटा। उसी दिन से उनके शरीर और चित्त की शान्ति जाती रही। यह विद्यासागर ही के उद्योग का प्रताप था कि उनकी मृत्यु के पीछे स्त्रीशिक्षा का इतना प्रचार हो गया कि सन् १८२४ ईस्वी में कलकत्ते की बङ्गाली शिक्षित स्त्रियों ने अपने मृत शुभाकांक्षी पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के स्मारक के लिये १६७०) रु० इकट्ठा करके कलकत्ता विश्वविद्यालय के हाथ में इसलिये अर्पण कर दिया कि तीसरी श्रेणी में पढ़ कर जो हिन्दू बालिका एन्ट्रेन्स पास करने के लिये आगे पढ़े उसे दो वर्ष के लिये एक छात्रवृत्ति (Scholarship) दी जाय।

## विद्यासागर का विधवाविवाह के लिये उद्योग

यह बात कदाचित् आप लोगों से छिपी नहीं है कि विद्यासागर बङ्गललनाओं के परम मित्र थे। अपनी बालिका गुरुपत्नी के वैधव्य से उन्होंने दुःखित हो अतिविलाप कर अन्त में मनही मन जो प्रतिज्ञा की थी वह भी आप लोग पढ़ चुके हैं। हमने उस समय उनकी प्रतिज्ञा का खुलासा नहीं किया था और कहा था कि आगे चल कर मालूम होगा। वह प्रतिज्ञा और कुछ नहीं केवल यही थी कि "तन मन धन न्योछावर कर कुलीनों के बहुविवाह की चाल को उठाना और विधवा-विवाह चला कर बङ्गदेश की बालविधवाओं के दारुण कष्ट का निवारण करना।"

अतएव काम का समय आते ही उन्होंने इस उद्योग में हाथ लगा दिया, परन्तु इस काम में हाथ डालने के पहिले उन्हें शास्त्रों के प्रमाण संग्रह करने में बड़ा परिश्रम करना पड़ा। अन्त को खोजते खोजते पराशरसंहिता में "नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥" इसी प्रमाण के आधार पर उन्होंने विधवाविवाह की एक पुस्तक लिख कर बड़ी युक्तियों से विधवा विवाह शास्त्रोक्त सिद्ध किया। फिर पिता माता की आज्ञा लेकर सन् १८५३ ईस्वी में वह पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही बङ्गाल प्रान्त भर में 'शान्त समुद्र में एका एकी तूफ़ान' आने की भांति बड़ा आन्दोलन मच गया। घर घर इसीकी चर्चा होने लगी। चारों ओर से जहां जाइए वहां विधवाविवाह और विद्यासागर ही की चर्चा सुनाई देती थी। बहुत से लोगों ने विद्यासागर की युक्ति का खण्डन कर छोटी छोटी पुस्तकें बनाई, जिसमें उन्होंने विद्या-

सागर को बहुत कुछ खोटी खरी भी सुनाई। समाचारपत्रों को तो नया मसाला मिल गया। उन्होंने भी विद्यासागर की युक्ति का खण्डन कर उन पर मनमानी गालियों की बौछार की। किसी ने ऊपर लिखे हुए पराशरसंहिता के स्पष्ट अर्थ पर पानी फेर कर उसका मनमाना अर्थ लगाना आरम्भ किया। सारांश यह कि 'सत्र महारथियों ने अपना अपना अस्त्र शस्त्र ले चारों ओर से महावीर अभिमन्यु को घेर लिया।' परन्तु जैसे उस महावीर ने उन सब महारथियों के दांत खट्टे कर दिए थे, वैसेही इन लोगों के जवाब में सन् १८५५ ईस्वी में एक बड़ा ग्रन्थ जिसमें उन सब छोटी छोटी पुस्तकों और समाचार पत्रों के आक्षेप का उत्तर था, लिख कर उन्होंने प्रकाशित किया, जिससे सब विपक्षियों के मुंह बन्द हो गए और हजारों आदमी हमारे चरित्रनायक के पक्ष में हो गए। यद्यपि इन पर आक्षेप कर लोगों ने अपने लेखों में इन्हे असंख्य गालियां दी थीं, परन्तु इनके जवाब में हमारे चरित्रनायक ने बड़ी ही मधुरता के शब्दों का व्यवहार कर अति प्रबल युक्ति का सहारा ले उन लेखकों को लज्जित कर दिया। सब अपनी अपनी दुम दबा कर खिसक गए। सच है, ठण्ढा पानी सहज ही में प्रबल अग्नि को शान्त कर देता है। इस कार्य में आगे बढ़ने से विद्यासागर के सामने और एक बड़ी भारी बाधा आ खड़ी हुई। वह यह थी, बङ्गला दायभाग (जिसके अनुसार बङ्गालियों के जायदाद का फैसला होता है) के अनुसार पुनर्विवाहित स्त्री की सन्तान अपने पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नहीं हो सकती थी। इस लिये हमारे चरित्रनायक को गवर्मेण्ट के पास एक ऐसा कानून बनाने के लिये कि जिससे विधवा के दूसरे पति की सन्तान अपने पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारिणी हो सके, दरखास्त देनी पड़ी। इस दरखास्त पर बङ्गप्रान्त के बड़े बड़े रईस और पण्डितों के पचीस हजार से कम दस्तखत न थे। उस समय के वर्द्धमान के राजा महताबचन्द ने एक जुदी दरखास्त भेजी जिसमें उन्होंने विद्यासागर के मत का बड़ी युक्ति से पोषण किया। अतएव लाट साहेब की कौंसिल में बहुत कुछ वादानुवाद के पीछे यह कानून पास हो गया कि "यदि विधवा का दूसरा विवाह हो तो उसका पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति का पूरा मालिक हो सकेगा"।

इस कानून के पास होने से विद्यासागर का उत्साह और भी बढ़ गया और वे तन मन धन से इस उद्योग में लगे। अन्त को बङ्गला सन् १२६३ की २३ वीं अगहन को कलकत्ते में एक विधवा ब्राह्मण कन्या का विवाह बड़े समारोह से हुआ जिसके प्रधान कारण हमारे चरित्रनायक ही थे। इस विवाह की बरात में असंख्य आदमियों की भीड़ थी। अनहोनी को होते देख कर सब लोग चकित हो रहे थे। इस विवाह में कलकत्ते के बड़े बड़े रईस और विद्वान पण्डित सम्मिलित हुए थे। पत्नी की अवस्था केवल दस वर्ष की थी। यह चार वर्ष की अवस्था में विधवा हो गई थी। विवाह इत्यादि का सब कार्य कुशलपूर्वक हो गया। थोड़े ही दिन पीछे और भी ऐसा ही एक ब्याह हुआ। फिर तो धीरे धीरे ऐसे कई ब्याह हुए, जिन सभों में विद्यासागर ने बहुत कुछ सहायता दी। एक तो लोग विद्यासागर के पहिले ही शत्रु थे, अब विधवाविवाह होने पर इनके विपक्षी आग बबूला हो गए, यहां तक कि इनके पास तरह तरह की धमकियों की बेनाम चिट्ठियां आने लगीं। परन्तु इस धर्मवीर ने इन सब तुच्छ बातों की कुछ भी परवाह न की। परन्तु हां, साथ में एक शरीररक्षक सदा रखने लगे। एक दिन की बात है कि आधी रात को संस्कृत कोलेज से घर जाते समय मार्ग में दस बारह आदमियों ने हाथों में छुरा लिए हुए इन्हें घेर लिया। साथ में श्रीमन्त नाम का रक्षक लाठी लिए मौजूद था जिसे देखते ही दुष्ट सब तीन तेरह हो गए। सच है गुमहंता

सदाही से कायर होते चले आए हैं। अतएव हमारे चरित्रनायक निर्विघ्न घर पहुंच गए। उनके मित्र उनसे सदा इस बात का अनुरोध किया करते थे कि आप रात को बाहर न जाया करें, जिसे वह हँस कर टाल देते थे। विद्यासागर के लाखों शत्रु थे जो उन्हें हर तरह से हानि पहुंचाने की चेष्टा किया करते थे। परन्तु इस ब्राह्मणकुमार ने जो अपने मुंह से कहा था कि "मेरा व्रत चिता-भस्म के साथ समाप्त होगा", वह अपने कामों से उसने कर दिखाया। वाक्यवीरो! तनिक इस महात्मा की ओर ध्यान दो और देखो कि सच्ची प्रतिज्ञा किसे कहते हैं। हममें से हजारों आदमी ऐसे निकलेंगे जो अपने कुटुम्ब और जन समाज के लोगों के थोड़े से विरोध से डर कर अपनी आत्मा का हनन कर डालते हैं, या यों कहिए कि अपने सिद्धान्तों से गिर जाते हैं। यदि वे अपनी आत्मा को ऐसा दृढ़ बनावें तो क्या उनका कोई बाल भी बांका कर सकता है। विद्यासागर के लाखों शत्रु थे। किसीने उनका घर फूंक देने, और किसीने उनके मार डालने तक की धमकी दी, परन्तु आत्मिक बल से उत्साहित विद्यासागर का क्या कोई बाल भी बांका कर सका? भाइयो! जनसाधारण का यह भय सर्वथा निर्मूल है। जिसकी आत्मा सचाई पर दृढ़ता से आरूढ़ है उसका कोई क्या कर सकता है। महान पुरुषों और साधारण आदमियों में यही तो विभेद है कि पहिले प्रकार के मनुष्य सचाई के सामने प्राणों की भी परवाह नहीं करते और दूसरे तनिक ही में अपने सिद्धान्तों से कोसों नीचे जा गिरते हैं। इस कार्य में पहिले पहल हाथ डालते समय कई मित्रों ने हमारे चरित्रनायक को सहायता देने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु जब काम का समय आया तब सबने अपनी अपनी राह नापी। ऐसे विवाह इत्यादि कराने में विद्यासागर के हजारों रुपए खर्च होते थे। धीरे धीरे उन्हें द्रव्य की तङ्गी ने आ घेरा। द्रव्याभाव से यह काम बन्द सा हो चला। लोगों ने यह कहना आरम्भ किया कि "संयोगवश दो एक विवाह हो गए। अब क्या होना है।" दुर्भाग्यवश कहीं इसी समय (सन् १८५७ ईस्वी) में सरकारी सिपाहियों ने गदर मचा दी, जिस कारण सर्कार को भी बहुत कुछ आफत झेलनी पड़ी। लोगों ने हौरा उड़ा दिया कि विधवाविवाह का कानून ही इस गदर का कारण हुआ है। अतएव कुछ दिनों तक यह काम रुका रहा, परन्तु विद्रोह शान्त होने के पीछे ही फिर से ईश्वरचन्द्र कमर कस कर अपने कर्तव्य पर तत्पर हो गए! अतएव जब विरोधियों ने देखा कि "यह कैसा बैरी है जो मर कर भी नहीं मरता," तब वे सब हार कर चुप हो बैठे। इसके पीछे एक आठ वर्ष की विधवा कन्या का फिर विवाह हुआ। पाठको! आप लोग सुन के आश्चर्य करेंगे कि यह लड़की डेढ़ वर्ष की अवस्था में विधवा हो गई थी। इसका फिर से विवाह होना उचित था या नहीं, इसके विचार का भार हम पाठकों ही पर छोड़ते हैं।

एक दिन विद्यासागर के किसी मित्र ने उनसे पूछा कि "देश में इतने आदमियों के रहते आप अकेले इस काम के लिये क्यों जान दे रहे हैं," जिस पर उन्होंने उत्तर दिया कि "काम आरम्भ करते समय मैं अकेला थोड़े ही था। बहुतों ने सहायता देने की आशा दी थी। परन्तु जो मा के लड़के थे वे चुपचाप अपनी अपनी माता की गोदी में जा छिपे और मैं बाप का लड़का था इसलिये काम के समय मैदान में डटा रहा"। इस काम से लोग यह भी कहने लगे कि "हां! दूसरों के धर्म का नाश करके विद्यासागर कीर्ति बटोर रहे हैं। अपने यहां ऐसी चाल चलावें तो मालूम पड़े"। अतएव जब विद्यासागर के एकमात्र पुत्र नारायणचन्द्र का विवाह एक विधवा से हुआ तब तो ऐसा कहनेवालों के मुख पर हवाइयां उड़ने लगीं। काम वही कि जिसे शत्रु भी मान जाय।

बहुत से लोग यह पूछ सकते हैं कि विद्यासागर के इतने उद्योग पर भी विधवाविवाह प्रचलित क्यों न हुआ। इसका उत्तर स्वयम् वे अपनी पुस्तक में एक जगह लिख गए हैं कि "मुझे आशा थी कि किसी सामाजिक रीति के शास्त्रोक्त साबित करने हो से इस देश के लोग उसे मान कर चलेंगे। परन्तु मेरा यह विश्वास जाता रहा। मैं यह नहीं जानता था कि इस देश के लोग लैकिक व्यवहार के सामने वेदशास्त्रों के कुछ भी नहीं गिनते।" साथ ही अपनी पुस्तक में वे एक जगह लिखते हैं कि "धन्य देशाचार! तेरी महिमा अलैकिक है। तू अपने भक्तों के गुलामी की जञ्जीर में जकड़ कर उन पर स्वतन्त्रता से राज्य कर रहा है।" इसके पीछे कुलीनों के बहुविवाह का प्रतिवाद कर इन्होंने गवर्मेण्ट के पास दरखास्त भेजी, परन्तु एक साथ ही समाज संस्कार के इतने भारी भारी दो कामों में गवर्मेण्ट के आगे कदम बढ़ाने का साहस न हुआ। कुलीनों के बहुबिवाह की जो सूची विद्यासागर ने इकट्ठी की थी उसका भी यहां कुछ आभास दे देना अनुचित न होगा। इस सूची में एक ५५ वर्ष के वृद्ध के अस्सी, एक अट्ठारह वर्ष के युवक के ग्यारह और बीस वर्ष वाले के सोलह विवाह हैं। और एक सूची जो छपी नहीं उसमें एक महात्मा का नाम है जिन्होंने १०७ विवाह किए थे। बारह वर्ष के लड़के के छ और पांच वर्ष के बालक के दो विवाह हुए थे। यद्यपि अब यह प्रथा प्रायः कम हो गई है तो भी सन् १८९१ ईस्वी की सूची में, जो सञ्जीवनी पत्र में छपी थी १०, २०, ५०, ६०, ६७ तक एक एक आदमी के विवाह लिखे हैं।

फिर दूसरी बार लगभग २५,००० आदमियों के हस्ताक्षर करवा के विद्यासागर ने इस सत्यानाशी प्रथा के रहित करने के लिये दूसरी दर्खास्त भेजी, परन्तु फिर भी यह दर्खास्त नामञ्जूर हुई।

विद्यासागर प्रायः दुखित हो कर कहा करते थे कि "हाय अबलागण! तुम लोगों ने किस पाप से भारत में आकर जन्म ग्रहण किया है?" उनकी आन्तरिक इच्छा थी कि अपनी बहुबिवाह की पुस्तक का अङ्गरेज़ी अनुवाद कर बिलायत जा कर श्रीमती महारानी विक्टोरिया के भेंट दूँ और उनसे पूछूँ कि स्त्री के राज्य में भारत की अबलाओं की यह दुर्दशा क्यों होती है। परन्तु कराल काल ने उन्हें अवसर नहीं दिया कि अपनी यह इच्छा पूर्ण करते।

सन् १८६८ ईस्वी में जो बङ्गाल टेम्परेंस सोसायटी स्थापित हुई थी उसके ये एक माननीय सभासद और पूर्ण सहायक थे।

## विद्यासागर का शिक्षाविस्तार

जिस समय ये इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स् का काम करते थे तो एक बार दौरा करते करते अपनी जन्मभूमि वीरसिंह ग्राम में पहुंचे। उस ग्राम में बालकों के पढ़ने लायक कोई स्कूल न था अतएव आप ने एक टुकड़े जमीन पर जिसे इसीलिये मोल ले रक्खा था, स्कूल का मकान बनवाना प्रारम्भ कर दिया। विद्या और शिक्षा फैलाने में उनका कैसा आन्तरिक उत्साह था इसका प्रमाण इसीसे मिल जाता है कि उपरोक्त मकान की नीव खोदते समय पहिले दिन जब कोई मज़दूर न मिला तो इन्होंने अपने भाइयों के साथ कुदाली, फरसा ले एक दिन स्वयम् यह काम किया। किसी कारण से सङ्कल्पित कार्य एक घड़ी भी रुका रहना उन्हें शूली की नाईं खटकता था। एक ओर स्कूल का मकान बनने लगा दूसरी ओर एक स्थान भाड़ा लेकर स्कूल का काम आरम्भ हो गया। पांच ही सात दिन में इस स्कूल में सैंकड़ों लड़के भर्ती हो गए। इसके सिवाय वहीं एक कन्या पाठशाला भी खोली और किसानों के लड़कों के लिये Night School खोल कर उनकी शिक्षा का मार्ग सुगम कर दिया। इस स्कूल में गरीब किसानों के लड़के दिन भर खेती इत्यादि करने के पीछे रात के पढ़ते थे। इन सब स्कूलों में फीस कुछ भी नहीं ली जाती थी। सब मिला कर इन

स्कूलों में ५०० रु० मासिक खर्च होता था। पहिले ते कुछ दिन तक विद्यासागर अपने पास से यह खर्च करते रहे। परन्तु फिर सर्कार से भी सहायता मिलने लगी। यह विद्यालय अब तक विद्यासागर की माता के नाम पर "भगवती विद्यालय" के नाम से वीरसिंह ग्राम में मैाजूद है। दरिद्र विद्यार्थियों के भोजन वस्त्र तो वह सदा अपने पास से दिया ही करते थे। इस वीरसिंह ग्राम में कोई सुयोग्य चिकित्सक न था। अतएव परोपकारी महात्मा विद्यासागर ने अपने खर्च से कई युवकों के डाकृरी पढ़ा कर वीरसिंह ग्राम में दातव्य ग्रैाषधालय ग्रैार विद्यालय खुलवा दिया।

सन् १८४८-४९ ईस्वी में जब यह संस्कृत कोलेज में नैाकरी करते थे, उस समय अपने मित्र मदनमोहन तर्कालङ्कार के साझे में इन्होंने "संस्कृत प्रेस" नाम का एक छापाखाना खोला। इस छापेखाने में वह अपनी बनाई हुई पुस्तक आदि छापते थे। कुछ दिन पीछे तर्कालङ्कार के मर जाने पर विद्यासागर ने उनकी स्त्री के प्रेस के आधे हिस्से का मूल्य देकर आप छापाखाना चलाना आरम्भ किया, ग्रैार साथ ही "संस्कृत प्रेस डिपोजिटरी" नाम का एक पुस्तकालय भी स्थापित किया जो अब तक विद्यमान है।

उन दिनों सर्कारी स्कूलों में बड़ी फ़ीस लगती थी। यद्यपि दूसरी ग्रोर कृष्टान पादड़ी लोगों ने कम फ़ीसवाले स्कूल खोल रक्खे थे, परन्तु लोग इस डर से कि लड़के कृष्टान हो जांयगे, अपने बालकों के उनमें नहीं भेजते थे। इसलिये सन् १८५९ ईस्वी में कई एक उद्योगी बङ्गाली युवकों ने "कलकत्ता ट्रेनिङ्ग स्कूल" नाम का एक स्कूल स्थापित किया, जिसमें कम फीस पर शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। इस स्कूल की कमेटी के विद्यासागर भी एक मेम्बर थे। कुछ दिन पीछे जब कमेटी से स्कूल न चल सका, तो सब मेम्बर लोग विद्यासागर ही पर इसका बोझा डाल कर अलग हो बैठे। जब से विद्यासागर इसके कर्ता धर्ता हुए तब से स्कूल की नित्य नवीन उन्नति होने लगी। उन्होंने इस विद्यालय की कार्य व्यवस्था के लिये एक कमेटी बनाई जिसके सेक्रेटरी वह आप हुए ग्रैार कमेटी से नवीन नियम पास करवाकर इस स्कूल का नाम Metropolitan Institution रक्खा*। अब तक तो इस स्कूल में एण्ट्रेन्स तक ही पढ़ाई होती थी, परन्तु सन् १८७२ ईस्वी में विश्वविद्यालय ने इन्हें कोलेज क्लास खोलने की आज्ञा दे दी। सर्कारी प्रेसिडेन्सी कोलेज में १२) फ़ीस लगती थी, परन्तु उन्होंने ३) कर दिया। पहिले वर्ष जब कोलेज के लड़के परीक्षा में भेजे गए तो लड़कों के पास होने के विचार से यह कोलेज दूसरे नम्बर पर रहा। सन् १८८१ में Matropolitan से छात्र बी० ए० की परीक्षा में भेजे गए जिसका फल अच्छा रहा। इसके कुछ दिन पीछे एम० ए० ग्रैार बी० एल० के छात्र भी भेजे गए। फिर तो कोलेज चल निकला। विद्यासागर ने अपने पास से बहुत सा रुपया खर्च कर कोलेज का एक पुस्तकालय बनवा दिया। इस विद्यालय की उन्नति के लिये इन्होंने हज़ारों रुपए अपने पास से खर्च किए, परन्तु कभी भी विद्यालय की रोकड़ से एक पैसा नहीं लिया। इस विद्यालय की उन्नति में उन्होंने तन मन धन सब अर्पण कर दिया था। कई हज़ार रुपया कर्ज करके इन्होंने विद्यालय की इमारत भी बनवा दी थी, जिस ऋण के उन्होंने धीरे धीरे अपनी जीवित दशा ही में चुका दिया था। इनके पीछे अब इस विद्यालय का कार्य एक कमेटी के द्वारा चलता है, जिसमें कलकत्ते के कई रईस ग्रैार शिक्षित लोग मेम्बर हैं ग्रैार साथ ही इस विद्यालय के दे शाखा स्कूल कलकत्ते के बहूबज़ार ग्रैार बड़े बजार में भी मैाजूद हैं।

* इस स्कूल में कलकत्ते रहते समय सन् १८८४ ईस्वी से १८८९ ईस्वी तक पांच वर्ष मैंने भी पढ़ा था।

## विद्यासागर का पारिवारिक और सामाजिक जीवन

विद्यासागर अपने माता पिता के कैसे भक्त थे, इसका आभास तो पहिले ही दिया जा चुका है। बिना माता पिता से पूछे वे किसी काम में भी हाथ नहीं डालते थे, यहां तक कि जब इन्होंने विधवाविवाह प्रचार की पुस्तक लिखी तो उसे भी अपने माता पिता से आज्ञा लिये बिना नहीं छपाया। इनका स्वभाव बड़ा हंसोड़ था। अपने परिवारपालन की अपेक्षा वह दीन दुखियों का पालन करना अच्छा समझते थे। अपने घर के लिये ग्राम के बिने हुए मोटे कपड़े काम में लाते और दीन दुखियों के लिये गट्ठर के गट्ठर बढ़िया बढ़िया नवीन वस्त्र, दवाई और नए बने हुए चमकते हुए रुपए पैसे रेजगारी सब सदा साथ में रक्खा करते थे। जब ये अपने ग्राम में जाते तो उस ग्राम के करीब दुखी लोगों को इतनी प्रसन्नता होती कि जितनी इनके घर वालों को भी नहीं होती थी। विद्यासागर की माता भी बड़ी दानी थीं। दिन भर उनके घर कङ्गालों का जमघट्ट लगा ही रहता था। सबको भोजन कराकर सन्ध्या को आप खाती थीं। सच है "दानी माता की सन्तान दानी क्यों न हो।" विद्यासागर की अपने भाइयों से कभी नहीं बनती थी। आप लोग कदाचित् पूछ सकते हैं कि जिस विद्यासागर के स्नेहपाश में बँध कर गरीब दुखिए सब मुग्ध से हो रहे थे, उनको भाई से क्यों न बनी? इसका उत्तर यह है कि विद्यासागर स्वतन्त्रस्वभाव के मनुष्य थे। उन्होंने अपने भाइयों पर विश्वास करके जो काम उनके सपुर्द किया वहीं काम मिट्टी में मिल गया। परन्तु तिस पर भी सब भाइयों को यथायोग्य मासिक द्रव्य की सहायता तो वे दिया ही करते थे। सब मिलाकर अनाथ विधवाओं को मासिक सहायता और दीन दुखियों को अन्न वस्त्र देने में लगभग ८००) मासिक खर्च होता था।

सन् १२७७ (बँगला) में हमारे चरित्रनायक के पिता का काशी में स्वर्गवास हुआ, तथा सन् १२८३ में इनकी माता भी परलोक को सिधारीं। पिता माता के मरने से इन्हें बड़ा दुःख हुआ। घर से इनका चित्त विरक्त हो गया। इसलिये सब घर बार छोड़ कर कलकत्ते में एक निराले स्थान में रहने लगे। परन्तु इस जगह भी उनका स्वाभाविक परोपकार बन्द नहीं हुआ। वह सर्वदा दीन दुखियों की दातव्य चिकित्सा होम्योपैथिक रीति से किया करते थे। इस निराले में उन्हें पुस्तक इत्यादि पढ़ने का बहुत अवकाश मिलता था। इनमें यह एक बड़ा भारी गुण था कि जिससे एक बार मिले उसे अपना स्नेही बना लिया। यदि वह गरीब हुआ तो बस उसी दिन से मानों इन्होंने उसे अन्न वस्त्र देने का ठीका ले लिया। इसके सिवाय अपने सम्भ्रान्त मित्रों की सेवा भी वे यथा साध्य किया करते थे।

कासिम बाजार की स्वर्गवासिनी महारानी स्वर्णमयी सी० आई० ई० इन्हें बहुत मानती थीं और समय समय पर विद्यासागर को इनसे ऋण इत्यादि की बहुत कुछ सहायता मिलती थी। विद्यासागर के कई मित्र अकाल में काल के गाल में चले गए। उनके परिवार के पालन पोषण और बाल बच्चों के लिखाने पढ़ाने का सब प्रबन्ध येही करते थे। यद्यपि विद्यासागर सैंकड़ों रुपए महीने का दान करते थे, परन्तु एक कौड़ी भी व्यर्थ नहीं खर्च करते थे। उन्होंने अपने जन्म भर में एक बार गाड़ी किराए में मंगाई थी। जहां जाना होता पैदल ही जाते थे। यदि कोई पूछता तो कहा करते कि जब तक शरीर चलता है वृथा रुपए खर्च करने की क्या जरूरत है। जब एक मोटी धोती चादर और ॥) के चट्टी जूते से काम चल जाता है तब चोगा चपकन न पहिना तो क्या शान मारी गई। घर में यदि कोई चीज पुड़िए में आती तो उस पुड़िया के सुतली कागज इकट्ठे कर रखते। उनके पास को आई हुई चिट्ठियों में यदि कोई अंश सादा बचा रहता तो उसे बड़ी सावधानी से छूरी से

काट काट कर इकट्ठा कर रखते और फुटकर काम की बातें लिखने में इन्हें काम में लाते थे।

विद्यासागर की लोकसेवा

सन् १८८३ ईस्वी में जब बङ्गाल के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन युरोप गए तो उन्हें वहां रुपए की बड़ी तङ्गी हो गई। द्रव्याभाव से उनकी बड़ी दुर्दशा हुई, यहां तक कि उन्हें फ्रान्स के एक जेल में जाने की पारी आ गई और उनकी स्त्री और पुत्रों को सिवाय अनाथाश्रम के आश्रय लेने के और कोई उपाय न रहा। यद्यपि माइकल का भारतवर्ष में करीब ४०००) अपने मित्रों से पावना था, परन्तु तार पर तार भेजने पर भी किसीने कुछ जवाब न भेजा। अन्त को निराश हो इन्होंने विद्यासागर (दयासागर कहिए) के पास अपनी दुर्दशा जतला कर एक चिट्ठी भेजी। विद्यासागर ने उनके मित्रों के यहां बहुत दौड़धूप की कि जिसमें कोई महाशय तो कृपा कर माइकल का जो रुपया देना है उसे इस विपत्ति के समय दे दें, परन्तु सबों ने कुछ न कुछ बहाना कर दिया। विद्यासागर के पास उस समय फूटी कौड़ी भी न थी, अतएव १५००) ऋण लेकर उन्होंने माइकेल की सहायता के लिये फ्रान्स भेज दिया; और समय समय पर और भी बहुत से द्रव्य से सहायता देते रहे। अन्त को अपने खर्च से उन्हें विलायत में बारिष्टरी पास करवा कलकत्ते बुलवा भेजा। परन्तु माइकेल एक दिन भी विद्यासागर के कहने पर न चले। वे बड़े फ़ज़ूल-खर्च थे, उनके हाथ में रुपया आया और दो दिन में स्वाहा! ऐसे आदमी के हाथ में पड़ कर विद्यासागर को भी बड़ी आपत्तियां झेलनी पड़ीं। जब तगादगीरों से तङ्ग हो कर विद्यासागर ने माइकेल से द्रव्य की सहायता मांगी तो उन्होंने कोरा जवाब दिया। इसलिये विद्यासागर को लाचार हो अपने संस्कृत प्रेस का तीन हिस्से में से दो हिस्सा बेचना पड़ा।

आप लोग सायत जानते होंगे कि सन् १८६७ ईस्वी में बङ्गाल प्रान्त में घोर अकाल पड़ा था। विद्यासागर ने चेष्टा कर गवर्मेण्ट से तो सहायता दिलवाई ही परन्तु स्वयम् भी ग्रामों में जा जा कर हज़ारों रुपया खर्च कर वे दरिद्र किसानों की भोजन, वस्त्र और औषधि इत्यादि से रक्षा करते रहे। चार पांच महीने तक उनका यह परिश्रम जारी रहा, यहां तक कि डोम, चमार, मेहतर—जिन्हें लोग छूने से भी घृणा करते हैं, उन्हींके सिर में इस अकाल के समय ये अपने हाथों से तेल लगा दिया करते। इस अकाल के समय में उन्होंने अपना सब कुछ दीन दुखियों की सेवा में लगा कर हज़ारों भूख से व्याकुल मनुष्यों के प्राण बचा लिए। कहिए वाक्यवीर देशहितैषी महाशयो! आपमें से कितने आदमियों ने संवत् १९५६ के अकाल और महामारी में दीन किसानों की रक्षा की? क्या विद्यासागर के पास धन था? क्या बहुत से मित्रों की सहायता थी? नहीं, नहीं। केवल सच्ची लोकसेवा की प्रबल इच्छा उनके हृदय में रात दिन बनी रहती थी, जिस कारण उन्होंने वह काम दिखाया कि जिसका जोड़ा सायद बिरला ही देख पड़ेगा। सत्तर हज़ार आर्य-सन्तान संवत् १९५६ के अकाल में कृष्टान बन गए, लाखों किसान और चौपाए नाश हो गए। हाय! हम लोगों में से क्या एक भी विद्यासागर (दया-सागर) नहीं निकला?

विद्यासागर की तबियत सदा गड़ बड़ रहा करती थी। उन दिनों बङ्गाल प्रान्त के वर्द्धमान ज़िले की आबहवा बहुत उत्तम समझी जाती थी, अतएव हवा बदलने के लिये ये प्रायः वहां जाकर रहा करते थे। महाराज वर्द्धमान भी इनको बहुत मानते थे। दुर्भाग्यवश सन् १८६९ ईस्वी में बङ्गाल में मेलेरिआ (Malaria) नाम का महाभयङ्कर ज्वर फैला। तब से वर्द्धमान की आबहवा भी बिगड़ गई। जब कभी दीन दुखियों पर किसी प्रकार का दुःख आन पड़ता तभी ये हर तरह से उनके दुःख मोचन में कमर कस कर तय्यार हो जाते थे। इस रोग के फैलने पर इन्होंने सर्कार और वर्द्धमान के राजा से अनुरोध कर कई दातव्य

चिकित्सालय खुलवा दिए, तथा आप भी होमियोपैथिक की पेटी बगल में दाबकर घर घर फिरने और रोगियों की चिकित्सा तथा शुश्रुषा करने लगे।

पूर्वकथित खर्म्मेटाड नामक ग्राम में ये प्रायः रहा करते थे। वहां के गरीब जङ्गली सैंताल इनके परम मित्र हो गए। सब सैंतालों को वे प्रतिमास अन्न वस्त्र और मिठाई दिया करते थे। दुर्गापूजा के समय तो हरेक सैंताल को जरूर ही नवीन वस्त्र मिलता था। उन लोगों में यदि कोई रोगी होता तो विद्यासागर उसका इलाज करते। इन लोगों की शिक्षा के लिये उन्होंने वहां एक प्राइमरी स्कूल भी खोल दिया। जङ्गली सैंताल भी इनसे ऐसा स्नेह रखते कि यदि आपस में उनके किसी बात की तकरार होती तो उसका फैसला करवाने के लिये वे इनके पास दौड़े आते। बिना इनकी सलाह के कोई काम नहीं करते।

विद्यासागर ने कलकत्ते के बड़े बड़े रईस महाराजा जतीन्द्रमोहन ठाकुर इत्यादि को उत्साह दिला कर एक वृत्तिभण्डार स्थापित करवा दिया, जिसके द्रव्य से आज तक बङ्गप्रान्त के बहुत से गरीब परिवारों का पालन पोषण होता है।

इनके एक मित्र ने एक दिन प्रसङ्गवश इनसे इनकी संस्कृत प्रेस डिपोज़िटरी मांगी। आपने चट तथास्तु कह दिया। दूसरे दिन कई लोगों ने हज़ारों रुपया देकर विद्यासागर से यह डिपोज़िटरी खरीदनी चाही, परन्तु इन्होंने साफ कह दिया कि "जो चीज एक बार किसी को देदी सो देदी। अब चाहे कोई कुबेर का भण्डार भी दे तो मैं डिपोज़िटरी बेचने का नहीं।"

इनके स्थापित Metropolitan Institution में बहुत से लड़के बिना फ़ीस दिए पढ़ते थे। बङ्गाल प्रान्त में एक प्रकार की चड़क पूजा (शिव का व्रत) होती है, जिस व्रत में नीच जाति के लोग लोहे के सींकचों से शरीर छेद कर उसीमें रस्सी के सहारे लटक कर घूमते थे। विद्यासागर ने सर्कार को दरख्वास्त देकर यह चाल उठवा दी।

वृटिश गवर्मेण्ट भी हमारे चरित्रनायक का बहुत कुछ सम्मान करती थी जिसका परिचय उसने सन् १८८० ईस्वी में विद्यासागर को सी० आई० ई० की पदवी से विभूषित करके दिया।

सन् १२९५ (बँगला) में विद्यासागर की गुणमयी स्त्री भी परलोक सिधारीं। इनका अपना शरीर भी बहुत गिरने लगा था। पेट के लिवर में जो चोट आई थी उसने बुढ़ौती में और भी जोर पकड़ा। इसकी पीड़ा से वह शय्याग्रस्त हुए। पीड़ा बढ़ने लगी। धीरे धीरे ज्वर ने भी अपना जोर दिखाया। कई सुयोग्य डाक्टर कविराजों का इलाज भी होता रहा, परन्तु यह रोग आराम होनेवाला न था। अतएव सन् १२९५ (बंगला) के १३वीं श्रावण को रात दो बजे के १५ मिनट पर हमारे चरित्रनायक स्वर्ग को सिधार गए। हम भी हितोपदेश के दो श्लोक सुनाकर अपने लेख को समाप्त करते हैं।

यदि नित्यमनित्येन निर्म्मलं मलवाहिना !<br>
यशः कायेन लभ्येत तन्नलब्धं भवेन्नुकिम् ॥१॥<br>
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।<br>
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति ॥२॥

वेणी प्रसाद।

---

## पाली भाषा।

बड़े हर्ष का विषय है कि आज तीन चार वर्ष से "काशी नागरीप्रचारणी सभा" और "सरस्वती पत्रिका" द्वारा समय समय पर प्राचीन शोध (?) सम्बन्धी ऐतिहासिक लेख दिखाई देने लगे हैं। इस विषय का बीज हिन्दी भाषा के साहित्य क्षेत्र में स्वर्गवासी राजा शिवप्रसाद और गोलोकवासी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने सब से पहिले बोया था। उक्त भारतेन्दु जी ने १३ छोटी बड़ी ऐतिहासिक पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित कीं। उनमें एक प्राचीन शिलालेखों का संग्रह "पुरातत्व संग्रह" नाम से है। इसके पश्चात्

उदयपुराधीश महाराणा फतहसिंह जी ने कविराजा श्यामलदास को राजस्थान का पुरातत्व संग्रह करने के हेतु एक "इतिहास कार्य्यालय" स्थापित करने की आज्ञा दी। उस कार्य्यालय के मन्त्री पण्डित गैारीशङ्कर जी ने सन् १८९४ ई० में "प्राचीन लिपिमाला" नामक एक उत्तम ग्रैार अति उपयोगी पुस्तक प्रकाशित की। जोधपुर के मुंशी देवीप्रसाद जी भी अपने लगातार परिश्रम से बहुत कुछ राजस्थान के ऐतिहासिक तत्वों का उद्घाटन कर रहे हैं। परन्तु दुःख है कि अन्यान्य सुलेखकगण इस ओर किञ्चित् भी ध्यान नहीं देते। स्वार्थसाधन में सन्नद्ध लेखकों से कहना ही क्या है? वे तो प्रतिदिन निरर्थक पुस्तकों के ढेरों से साहित्य भण्डार को भर ही रहे हैं। उदाहरण लीजिए, इधर कुछ दिन हुए सरस्वती पत्रिका द्वारा एक "समालोचक समिति" स्थापित करने का प्रस्ताव किया गया था। यद्यपि वह प्रस्ताव किञ्चित् कार्य्य में परिणत भी नहीं हुआ, परन्तु उपरोक्त प्रकार के व्यवसायी लेखकगण अभी ही से भयभीत होने लगे। एक महाशय निज अनुवादित एक पुस्तक की भूमिका में बहुत कुछ रोषान्वित होने के उपरान्त लिखते हैं—"कोई कोई अपने स्वार्थसाधन के लिये समालोचकसमिति वा समालोचकसमाज स्थापित करना चाहते हैं ग्रैार स्वयं विचारों ने काव्य प्रकाश, अथवा काव्य के किसी ग्रन्थ को स्वप्न में भी नहीं देखा होगा इत्यादि"। खेद!! परन्तु हर्ष है कि अब क्रमशः उच्चाशयसम्पन्न सुलेखकों की वृद्धि हो रही है, जिससे आशासूत्र दृढ़ होता जाता है कि शीघ्रही हिन्दी उन्नतागिरि के उच्चतम शिखर पर शोभायमान होगी।

भारतवर्ष, वरन् समग्र संसार, की प्राचीन भाषाओं में "पाली भाषा" एक प्रधान भाषा थी। संस्कृत के पीछे इसी भाषा ने गैारवपूरित अत्युन्नत सोपान पर अपना अटल आसन जमाया था; यद्यपि अब वह भारतवर्ष से सर्वथा तिरोहित हो गई है, तथापि आज कल के समस्त सभ्य देशों के साहित्यसमाजों में अनेक कृतविद्य व्यक्तियों को उस प्राचीन "पाली भाषा" की आलोचना में प्रवृत्त देखते हैं। पुराकाल में बौद्धधर्म्म के अत्युन्नत अवस्था में भारतवर्ष, सिंहल इत्यादि स्थानों में इस भाषा के पठनपाठन का पूर्णरूप से प्रचार था; परन्तु काल के दुर्विजेय कुटिल चक्र के परिवर्तन से इस भाषा का समादर लुप्त होगया। किन्तु इस दुर्भाग्य देश के पण्डिताभिमानी जनों के सम्पूर्ण शिथिलयत्न होनेपर भी परमेश्वर के परमानुग्रह भाजन पश्चिम देशीय पण्डितवरों का बहु-यत्न-प्राप्त धन एकत्रित हो रहा है। युरोपदेशीय पण्डितजन जिस कार्य्य में हाथ देते हैं, उसी कार्य्य में वे सफल मनोरथ होते हैं; क्या शिल्प, क्या वाणिज्य, क्या राजविस्तार ग्रैार क्या निज भाषा का उत्कर्षसाधन, इत्यादि, सभी विषयों में मानो भगवान् ने एकमात्र उन्हें ही कृतकार्य्य कर रक्खा है। परिश्रम ग्रैार चेष्टा से क्या नहीं हो सकता है!

जिन खोजा तिन पाइयां गहिरे पानी पैठ।

"उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहिं सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥"

परन्तु एतद्देशीय विद्वानों के आक्षेप के विषय को क्या आप सुनेंगे? अच्छा सुनिए!

कलकत्ता विश्वविद्यालय के संस्कृत की एम० ए० परीक्षा में कई एक निर्दिष्ट ग्रन्थ हैं, उनमें से दो तीन को न पढ़ करके, अर्थात् उनके परिवर्तन में "अशोक इन्सक्रिप्शन" (Inscription) अर्थात् राजा अशोक के समय की प्रचलित लिपि ग्रैार पाली भाषा को ही पढ़ कर, परीक्षार्थी परीक्षा दे सकते हैं। किन्तु विश्वविद्यालय के बड़े बड़े प्रेमचन्द्र-रायचन्द्र वृत्ति प्राप्त पण्डितवर अपने देश की इस प्राचीन विद्या की परीक्षा के परीक्षक नहीं हो सके! कारण वह तो मृत भाषा है न! अपने अमूल्य समय को क्यों उसके पठन पाठन ग्रैार मनन करने में व्यर्थ नष्ट करें। एक विदेशीय

पण्डितप्रवर उसके परीक्षक होकर अपने देश का मुख उज्वल कर रहे हैं।

खेद है कि आज कल हम लोग पाली भाषा के तत्वानुसंधान में यदि कुछ भी लिखने बैठें तो प्रथम ही डाक्टर केनिंहाम, फ्लीट, वाडले, रिज़ डेविड इत्यादि दूरदर्शी विद्वानों के आश्रय लेने का अवश्यमेव प्रयोजन उपस्थित होगा। येही लोग हमारे नेता होंगे, प्रमाणस्थल होंगे और व्यवस्थापक होंगे; हम लोग इन्हीं महात्माओं के उच्छिष्ट को संग्रह करके अपने को महागौरवान्वित समझेंगे। यह क्या कम आक्षेप का विषय है?

इस समय हम पाली लिपि* के बखेड़े को छोड़ कर केवल "भाषा" की आलोचना में प्रवृत्त होते हैं। पाली भाषा अत्यन्त प्राचीन भाषा है। अधिकतर विद्वानों का मत है कि पाली भाषा अन्यान्य भारतीय भाषाओं की भांति संस्कृत ही से उत्पन्न है, और इसके अक्षर महात्मा बुद्ध के उत्पन्न होने के बहुत पूर्व आर्य्यों द्वारा निर्मित और प्रचलित हो चुके थे। परन्तु पाली भाषा के व्याकरणकर्ता "कच्चयन" (कात्यायन) का कथन है कि "पाली भाषा समस्त संसार की भाषाओं की मूल है, और इस कल्प के आरम्भ में ब्राह्मण और इतर वर्णों की मातृभाषा रही, और स्वयं भगवान बुद्धदेव ने भी इसी भाषा में कथोपकथन किया था।" इसका दूसरा नाम "मागधी" है।

"समागधी मूल भाषा, नरेय आदि कप्पिक।
ब्राह्मण सम्बुद्धाय, सम बुद्धाथि भाषरे॥"

"पति सम्बिध अत्तुय" नामक पाली ग्रन्थ में लिखा हुआ है कि "यह भाषा देवलोक, प्रेतलोक और नरक में भी प्रचलित है। किरात, अन्धक, योणक और दामिल प्रभृति भाषाओं का परिवर्तन हुआ, परन्तु मागधी भाषा चिरकाल से एक ही रूप में वर्तमान है, इसका किसी काल में भी परिवर्तन न होगा। स्वयं भगवान बुद्धदेव ने भी इस भाषा को सब से सुगम जान कर, सर्वसाधारण के बोध के लिये इसी भाषा में अपना समस्त पिटक (उपदेश) वर्णन किया था।

पाली भाषा का तीसरा नाम "श्रावस्ती" है। बौद्धयुग में श्रावस्ती नगरी धन धान्य विज्ञानादि विद्याओं से सर्वथा समृद्धिशालिनी थी। "ग्रीस" की समृद्धावस्था में "एथेन्स" नगरी जिस प्रकार महा गौरवान्वित थी, और रोम के अभ्युन्नतावस्था में इटाली जिस प्रकार विद्या बुद्धि कलाकौशलादि तथा धनरत्नादि से परिपूर्ण हो सभ्यता की परम सीमा को पहुंची थी, उसी प्रकार श्रावस्ती नगरी ने भी समग्र भारतवर्ष में प्रधानता प्राप्त की थी। भगवान शाक्यसिंह वहां जैतवन में वास कर ज्ञानामृतापपासु व्यक्तियों को सदुपदेश-सुधा-वर्षण कर कृतार्थ करते थे, इसी समय में इस भाषा का किञ्चित् संस्कार साधन हुआ, वही संस्कारसम्पन्न बौद्ध भाषा "पाली" नाम से पुकारी जाने लगी। श्रावस्ती नगरी में संस्कार सम्पन्न उत्कर्षता प्राप्त करने से इस भाषा का एक नाम "श्रावस्ती" भी पड़ गया, और इसे श्रावस्ती भी कहने लगे। परन्तु संस्कृतभाषा की प्रधानता और उसकी दिग्दिगन्तव्यापिनी अक्षय कीर्ति युगयुगान्तर से अपनी विजयघोषणा द्वारा जगत को प्रतिध्वनित करती हुई चली ही आती थी।

श्रावस्ती नगरी में पाली भाषा के संस्कार साधन करने और समुज्वलता प्राप्त करने पर भी इस भारतवर्ष में संस्कृतरूपी सुधाकर के

---

* पाली "लिपि" के विषय में—डाक्टर आर० एन० कस्ट, सर विलियम जोन्स, प्रोफेसर क्यांप, प्रोफेसर लिप्सियस, डाक्टर ब्रिसलर, ई० सेनाटे, स्टिवन्सन्, पाल गोल्डस्मिथ, बर्नेल और एम० लेनोर्मेंट इत्यादि यूरोपीय विद्वानों का कथन है कि पालीलिपि "नूह" की सन्तान "शेम" आविष्कृत "सेमेटिक" अक्षरों से ही उत्पन्न हुई है। परन्तु इन महाशयों ने अपने कथनों की पुष्टि में कोई अयौक्तिक प्रमाण नहीं दिया है, और एडवर्ड टामस, जेनरल केनिंगहम प्रोफेसर क्रूश्चियन प्रोफेसर जानडाउसन और प्रोफेसर गोल्डस्टकर आदि का कथन है कि पाली लिपि को आर्य्यों ही ने निर्माण किया। पं० गौरीशङ्कर जी ने प्राचीन लिपि माला में प्रमाणित कर दिया है कि पाली लिपी के आविष्कारकर्ता आर्य्य ही हैं।

सुशीतल किरणों के सम्मुख पाली वा श्रावस्ती खद्योत ही के भांति प्रदीप्त हुई। हम्बीर की टीका में एक श्लोक द्वारा संस्कृत ग्रैार पाली भाषा का गुरुत्व ग्रैार लघुत्व का परिमाण दिखाया गया है-

संस्कृता शिष्ट भाषा च श्रावस्ती वाक् विनायका ग्रर्थात् शिष्ट लोगों में संस्कृत ग्रैार विनायक ग्रर्थात् बौद्ध लोगों में श्रावस्ती वा पाली भाषा प्रचलित थी। इस स्थान पर एक प्रश्न उठता है, "शिष्ट" शब्द यदि संस्कृतज्ञ ब्राह्मणों ही के सूचनार्थ है तो क्या विनायक ग्रर्थात् बौद्ध शिष्ट नहीं हैं? यह शिष्ट शब्द इस स्थान पर यदि ब्राह्मणों ही के लिये कहा गया है तो क्या इस शब्द ने इस संसार में ब्राह्मणों के सूचनार्थ ही ग्रस्तित्व लाभ किया है? तो क्या यह शब्द पारिभाषिक है? किसी कोष में शिष्ट शब्द * का ग्रर्थ ग्रबौद्ध ग्रविनायक वा केवल बौद्ध मत प्रतिवादी सन्त सुशील ब्राह्मण हो समझा जाय, ऐसा नहीं देखा जाता है। शिष्ट का गुणग्राम यदि बौद्ध में हो तो बौद्धधर्मावलम्बी सज्जनों को शिष्ट कहने में क्या ग्रापत्ति है? जो कुछ हो, इस स्थान पर, केवल यही जानना है कि शिष्ट ग्रर्थात् ब्राह्मण, विनायक ग्रर्थात् बौद्ध, इन लोगों में ब्राह्मणों की भाषा संस्कृत ग्रैार बौद्धों की भाषा पाली वा श्रावस्ती थी, केवल इतनाही इस श्लोक का यथार्थ ग्रर्थ है।

ग्रब इस समय देखना चाहिए कि पाली ग्रैार श्रावस्ती ठीक एकही भाषा है वा नहीं? ग्रर्थात् "इंगलिश ग्रैार ग्रङ्गरेज़ी" जिस प्रकार एक ही वस्तु हैं, मनुष्य ग्रैार मानव जिस प्रकार एकही पदार्थ हैं, उसी प्रकार पाली ग्रैार श्रावस्ती एकही भाषा हैं वा नहीं? "लङ्केश्वर व्यकारण" नामक प्राकृत ग्रन्थ में ग्रष्टादश भाषाग्रों का जहां उदाहरण दिया है, वहां देखने से साफ प्रमाणित होता है कि पाली ग्रैार श्रावस्ती प्रायः एक ही भाषा हैं।

भारतवर्ष के बिखरे हुए इतिहास के ग्रवलोकन करने से विदित होता है कि मगधराज्य के ग्रधिपत्य ने ग्रयोध्या प्रभृति राज्यों को सब प्रकार जर्जरित कर डाला था। इससे ग्रैार पूर्व भी, महाकवि कालिदासरचित रघुवंश में इन्दुमती के स्वयम्वर के देखने से ग्रैार भी साफ प्रगट हो जाता है, इन्दुमती के निकट सुनन्दा ने मगध राज्य के वैभव का जिस प्रकार ग्रोजस्वितापूर्वक वर्णन किया है, उसके ग्रागे ग्रयोध्या का वह ग्रटूट "गौरववर्णन" सर्वथा हार खाता है। मगध, बौद्ध धर्म्म का सर्वप्रधान महातीर्थस्थान था, हिन्दुग्रों का जिस प्रकार काशी, मुसलमानों का मक्का ग्रैार ईसाइयों का जेरूसलम है, बौद्ध लोगों का उसी प्रकार मगध था ग्रैार है। ग्रब भी ग्रगणित बौद्ध परिव्राजक केवल मगध के दर्शनार्थ चीन जापानादि देशों से ग्रनेक कष्ट उठाकर ग्राते हैं।

पाली शब्द के ग्रर्थ "श्रेणी" के हैं। हम लोगों के संस्कृत शास्त्र के सूत्र ग्रैार तन्त्र की भांति, बौद्ध लोगों के सब श्रेणीबद्ध धर्म्मग्रन्थ "पाली" नाम से प्रख्यात हुए। ग्रब इस समय मागधी भाषा में रचे हुए सभी ग्रन्थों ने पाली नाम धारण कर लिया है। ग्रध्यापक चाइलड्स् का ग्रनुमान है कि खृष्टीय शताब्दी से १०० से २०० वर्ष पूर्व ही बौद्धों के सभी ग्रन्थों ने "पाली भाषा के ग्रन्थ" नाम धारण कर लिया था। एक ग्रैार भी प्रबल कारण है। वह यह कि, इस समय जो कतिपय पालीग्रंथ प्राप्त होते हैं, उनसे बौद्धधर्म्म-संक्रान्त "मूल ग्रन्थ" पाली भाषा ही में समझे जाते हैं। उसीके उल्लेख के देखने से पाया जाता है कि, भगवान् बुद्धदेव ने पाली ही भाषा में शिष्यवर्ग तथा सर्वसाधारण को उपदेश दिया था ग्रैार ईसा के जन्म के ६०० वर्ष पहिले यह मगध देश की एकमात्र भाषा थी। यद्यपि उस समय इसे लोग मागधी कहते थे, परन्तु थोड़े ही दिनों के पीछे इसने 'पाली' नाम से प्रख्यात होना प्रारम्भ किया ग्रैार सिंहलद्वीप (लङ्का) में जाकर पूर्णरूप से मागधी नाम को परिवर्तन कर पाली नाम धारण कर लिया।

* परन्तु तर्कसङ्ग्रह के टीकाकार ने "शिष्ट" शब्द का ग्रर्थ "वैदिक मतावलम्बी" लिखा है।

भगवान् शाक्यसिंह ने मागधी भाषा में उपदेश दिया था, उनके शिष्यवर्गों ने उन उपदेशों का अनुवाद संस्कृत भाषा में करके प्रचार करने की अभिलाषा प्रगट की, परन्तु उन्होंने उनको संस्कृत भाषा में अनुवाद करने का पूर्ण निषेध कर प्राकृत भाषा ही में प्रचार करने की आज्ञा दी। कारण उस समय केवल उच्चवर्ण के ही लोग संस्कृतभाषा का पठन पाठन करते थे, दूसरे वैदिकधर्म्मग्रन्थ सब के सब संस्कृत ही भाषा में थे, इसलिये वैदिक सूर्य के सम्मुख बौद्धधर्म्मरूपी चन्द्रमा का प्रकाश होड़ में अवश्य ही हार खाता। जो हो पाली संस्कृत ही भाषा की सबसे बड़ी कन्या है और अब तक इसमें और संस्कृत भाषा में कहां तक सादृश्य है, वह नीचे लिखे हुए कतिपय शब्दमात्रों के देखने से प्रगट हो जायगा।

| संस्कृत | पाली | संस्कृत | पाली |
|---|---|---|---|
| अभिधर्म्म | अभिधम्म | अमृत | अमत |
| अर्थकथा | अत्थकथा | श्रुति | सुति |
| मन्त्र | मन्तो | मार्ग | मग्गो |
| म्लेच्छ | मिलाक्खो | निर्वाण | निर्वाणम् |
| यवन | योन | पर्वत | पब्बत |
| अश्व | असो | वृक्ष | रुक्ष |
| शिष्य | शिष्यण | सर्प | सप्प |
| सिंह | सिहो | कार्य्य | कज्ज |

३०१ खृष्टाब्दपूर्व महाराज महामहेन्द्र ने सिंहलद्वीप में बौद्धधर्म्म का प्रथम प्रचार किया, उसी समय से सिंहल में पाली भाषा ने विस्तार प्राप्त करना प्रारम्भ किया। खृष्टीय ५०० शताब्दी में मगध देश से गई हुई पाली भाषा ने लङ्का में विलक्षण उन्नति प्राप्त की। कच्चयन (कात्यायन) कृत पाली व्याकरण अत्यन्त प्रसिद्ध है, हम लोगों के पाणिनीय व्याकरण की भांति बौद्धगण इसका अतिशय सम्मान करते हैं, अब तक सिंहलद्वीपवासी बौद्धों में यह ग्रन्थ अत्यन्त समादरसहित संरक्षित है। पाली भाषा में अनेक व्याकरण के ग्रन्थ हैं, * परन्तु कच्चयनकृत पालीव्याकरण ही सर्वोत्कृष्ट है, इसी कारण उसका समादर भी सभों से अधिक है। डाकृर एङ्गलिं का कथन है कि कच्चयनकृत व्याकरण "नियमानुकूल एक पूर्ण कलाप व्यक्तकरण है।" यह व्याकरण आठ भागों में बिभक्त है, ये आठ भाग, और भी विविध अध्यायों में बिभक्त हैं, इसमें किसी किसी स्थान में तो अविकल पाणिनीयसूत्र गृहीत हुआ है; यथा पाणिनि "अपादाने पञ्चमी", तथा कच्चयन "अपादाने पञ्चमी"।

इस ग्रन्थ में अनेक बौद्ध तीर्थ स्थानों का उदाहरण भी दिया हुआ है, जैसे श्रावस्ती, पाटली और वाराणसी इत्यादि। "रूपसिद्धि" इस ग्रन्थ के सुप्रसिद्ध टीकाकार हुए हैं। "वुत्तोदय" एक सुप्रसिद्ध पाली भाषा का गद्य-पद्य-मय काव्यग्रन्थ है। यह पिङ्गल और वृत्तरत्नाकर प्रभृति सुप्रामाणिक संस्कृत काव्यों के आश्रय पर बना है। "धातुमञ्जूषा" एक महावंशनामक बौद्ध स्थविर द्वारा रचित है। कच्चयनकृत व्याकरण से पूर्ण सम्मत होने के कारण इसे लोग "कच्चयन-धातु-मञ्जूषा" भी कहते हैं; यह धातुमञ्जूषा डन० एन० डे़ श सिलविया बातुवान्तदेव नामक खृष्टीय मतावलम्बी बौद्ध पण्डितद्वारा अङ्गरेजी भाषा में अनुवादसहित प्रकाशित हो गया है। "अभिधान प्रदीप" अमरकोष की भांति पाली भाषा का सुप्रसिद्ध अभिधान है। इनके अतिरिक्त पालीभाषा में और भी कई एक सुप्रामाणिक उत्तमोत्तम ग्रन्थ हैं, उनमें से महावंश, द्वीपवंश, अताङ्गलुवंश, दाठावंश, ब्रह्मजालसुत्त, जातक, क्षुद्दकपर्व, सुत्तनिपात, महापरिनिब्बान सुत्त और धम्मपद इत्यादि अतिप्रसिद्ध और सिंहलदेश में पूर्ण प्रचलित हैं। विद्वद्वर जार्ज टर्नर महोदय ने महावंश के ३१ अध्यायों को अनुवादसहित छपवा कर प्रकाशित

* पालीभाषा-व्याकरण सम्बन्धी शब्दों का विशेष विवरण देखना हो तो, पं० सिधेश्वर शर्म्मा अनुवादित "पालीभाषा" नामक लेख काशी नागरीप्रचारिणी सभा से मंगा कर देखिए।

कर दिया है, उसका संक्षिप्त अनुवाद बङ्गभाषा में भी हो गया है।

यह लेख श्रीयुत पण्डित हरदेव जी शास्त्री के बँगला लेख के आश्रय पर लिखा गया है, इस हेतु मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं, और आशा करता हूं कि उनकी अनुसन्धानप्रिय लेखनी से ऐसे ही दूसरे लेखों के देखने का अवसर प्राप्त होगा।

लक्ष्मीशङ्कर द्विवेदी।

---

## रैफेलकृत सिस्टिन म्याडोना

चित्रविद्या के बहुतेरे समालोचकों का मत है कि रैफेल पृथिवी में सबसे नामी चित्रकर हो गए हैं। उन्हीं रैफेलकृत सिस्टिन म्याडोना के चित्र की नकल सरस्वती की इस संख्या में दी जाती है। रैफेल ने सन १४८३ ई० में इटाली देश के उर्बिनो नगर में जन्म लिया था। १५२० ई० में, अर्थात् केवल ३७ही वर्ष की अवस्था में, उनका परलोकवास होगया। उनकी आयु इतनी थोड़ी थी, तौभी इसी बीच में उन्होंने २८७ तेल से रंगे चित्र, ५७६ रेखाचित्र और नकशे और कई महलों की भीतों पर और बहुत से चित्र, खींचे थे। उनके एक एक चित्रों का मूल्य सुनने से आश्चर्य मालूम होता है। बिलायत के नैशनल गैलेरी नामकी चित्रशाला में रैफेलकृत एक म्याडोना (The Ansidei Madonna) का चित्र है। वह दस लाख अस्सी हज़ार रुपए में मोल लिया गया था। किसी दूसरे चित्र का इतना मूल्य आज तक नहीं ठहरा है। डि ऐनवर्स (D'Anvers) का कथन है कि सम्भव है कि सिस्टिन म्याडोना का चित्र पृथिवी के सब चित्रों से अधिकतर प्रसिद्ध है। इस समय जर्म्मनी के ड्रेसडेनामी नगर की चित्रशाला को यह चित्र सुशोभित कर रहा है। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री वा पुरुष जो इसे देखने जाते हैं, देखते ही मन्त्रमुग्ध की भांति इसके सामने खड़े रह जाते हैं, अथवा भक्तिपूर्ण अन्तःकरण से घुटने टेक टेक कर बैठ जाते हैं। कई बार इसे देख कई बुढ़िया स्त्रियों के नेत्रों से आंसू की धारा बहने लगी है। चित्र को देखकर उनके हृदयों में नई आशा उमड़ आई है, उनके मुखड़े नए आलोक से दमकने लगे हैं। म्याडोना को हिन्दी में 'मातृदेवी' कह सकते हैं। ईसा की माता ईसा को गोद में लेकर बादलों के ऊपर शान्तदृष्टि से खड़ी हैं। असंख्य स्वर्गदूतों के मुखमण्डल प्रभामण्डल की भांति उनको घेरे हुए हैं। सेण्ट सिक्सटस् अपने अनुचरों की ओर अंगुली से दिखाकर मातापुत्र से आशीर्वाद मांग रहे हैं, और सेण्ट बार्बरा प्रीतिभरी दृष्टि से नीचे की विश्वासी शिष्यमण्डली की ओर देख रहे हैं। आज तक इस चित्र की सुन्दरता का अनुकरण करते किसीसे नहीं बन पड़ा है। धर्म्मविषयक चित्राङ्कण में निपुण फ्रान्सिया आध्यात्मिक सौन्दर्य के खींचने में केवल रैफेल ही से घट कर समझे जाते हैं। इन फ्रान्सिया ने भी इस स्वर्गीय चित्र को देख निराश होकर अपनी कलम (Brush) अलग रख दी थी। कहा जाता है कि इस चित्र में ईसा की माता का मुख रैफेल ने अपनी प्रणयिनी मार्गारिटा के मुख के समान बनाया है। *

* प्रवासी से लिया गया।



पण्डित श्रीधर पाठक ।

# सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

भाग ३ ] नवम्बर १९०२ ई० [ संख्या ११


## गुरु-भक्ति।

प्रसिद्ध वीरशिरोमणि जयपुर के पूर्वभूत महाराजा सवाई जयसिंह जी का नाम राजपुताने को ही नहीं, किन्तु भारतवर्षमात्र को, आदर एवं गौरव के साथ स्मरण है। जिनकी बुद्धि एवं शिल्परचना का चिरस्मारक-चिन्ह जयपुर नगर आज भरतवर्ष का अनुपम सौन्दर्यस्थल है; जिनकी विद्वत्ता एवं विद्यारसिकता की अनेक गणित, धर्म्म, शिल्पग्रन्थावली और जयपुर, मथुरा, काशी, उज्जैन की प्रसिद्ध वेधशालायें साक्षी दे रही हैं; जिनकी रची हुई अश्वमेध-यज्ञ-वेदी आर्य मात्र को ग्रन्थावशेष-कर्मकार्य रूप में दिखारही है, वे सर्वगुणालंकृत नृपतिवर ग्यारहवर्ष की बाल अवस्था में जयपुर-राज की पूर्व राजधानी आंबेर में वैक्रमीय संवत् १७५६ में राज्याभिषिक्त हुए। इसके पहिलेही उनके परमसुयोग्य बुद्धिमान पिता महाराजा बिशनसिंह जी ने अपने होनहार पुत्र के कोमल मस्तिष्क में सब सद्गुणों की मुद्रा डालने के लिये एक सर्वगुणसम्पन्न कुशलसिंह नामक नाथावत क्षत्री को शिक्षक नियत किया। कुशलसिंह ने अपनी पूर्ण कुशलता से कुशलपूर्वक राजकुमार को सुशिक्षित बनाया। किन्तु प्रकृति के नियम से परिणामदर्शित्व अनुभव के आधीन है, अनुभव वय के आधीन है; अतः सुशिक्षित होने पर भी राजकुमार बालभाव के साथी थे। इसी कारण उनको बालकपन की स्वाभाविक उद्दंड चेष्टाओं पर आवश्यकीय दंड भी असह्य होता था; अमृत भी हलाहल ही के स्वरूप में दिखाई देता था; सच्चे हितैषी का क्षणिक वियोग भी परमाल्हादकारक था; सौम्यमूर्ति भी राक्षस की भीषणता में परिणत होती थी; कोमलता में भी कठोरता भासती थी; इसीसे कभी कभी क्रोध के आवेग में राजकुमार के मुंह से निकलता था कि "याद रक्खो, जब मैं महाराजा बनूंगा तब तुम

को बिना क़ैद किये नहीं छोड़ूंगा"। इस पर मुसकराते हुए कुशलसिंह की ओर से उत्तर मिलता कि "बहुत अच्छा"।

जब जयसिंह जी राज्यासन पर बैठे तो सब से पहिले यही आज्ञा दी कि कुशलसिंह को कारागार में ले जाओ। निदान उसी दिन से कुशलसिंह का बिछौना राजमहल से उठकर कारागार में लगा; भोजन* का निर्भर भिक्षा पर हुआ; भोजनपात्र के बदले एक ठीकरा हस्तगत हुआ; मूर्ख पापी पाखंडियों के कठोर कोलाहल और सहवास में दिन बीतने लगे। इतने पर भी धीर कुशलसिंह का प्रफुल्लित मुख म्लान नहीं हुआ; परोपकारी चित्त खिन्न नहीं हुआ; स्वामिभक्त हृदय लवलेश भी भक्ति के अभाव से कलङ्कित नहीं हुआ।

कालान्तर में एक दिन कुशलसिंह साथी कैदियों के साथ हाथ में ठीकरा लिये नगर में भिक्षा मांग रहा था, सब रस को एक ही पात्र में झेल रहा था, धार्मिक भावना से रोटी के सूखे बासी टूकड़ों को भी सादर ग्रहण कर रहा था; इतने में देखा कि महाराजा साहब घोड़े पर सवार हुए कई अनुयायी सुभटमंडल के साथ सामने से आ रहे हैं। यह देख कर सब कैदियों के साथ उनके रक्षक भी मार्ग के एक किनारे पर सादर खड़े हो गए और सवारी नजदीक आने पर कुशलसिंह ने प्रीति के भरे हुए गम्भीर नेत्र सिर के साथ झुका कर प्रणाम किया। महाराजा ने अपना घोड़ा कुशलसिंह के पास होकर निकाला और ताने से हँसकर कहा कि "ठीकरा लिया तब रहा"। कुशलसिंह ने गम्भीर मुखमुद्रा से उत्तर दिया कि "राजन्! मुझे यह ठीकरा बहुत प्रिय है; यदि मैं इस ठीकरे से डरता और आपको यथेच्छ उन्मत्त बरतने देता तो, ओ प्रियप्रभु! आज दिन सारा ढूंढाहड़† देश ठीकरा ले लेता"। इस वाक्य ने बिजली का सा असर किया। महाराजा रोमाञ्चित होगए, स्तब्ध होगए, बाल्यावस्था का अन्तिम परदा उठ गया, हितैषी की प्रियमूर्ति अनिमेष निहार कर नेत्र भर आए, कंठ गद्गद होगया, अपने कृतघ्न कर्म पर धिक्कार छूटा, हृदय में शल्य सी वेदना होने लगी, तुरन्त घोड़े पर से कूदकर प्रिय कुशलसिंह के मैले कुचैले गले से लिपट गए। देखते ही देखते सर्वत्र एक सन्नाटा छा गया, प्रबल स्नेह ने दोनों को प्रतिमावत् बना दिया, दोनों विशाल ललाट पर चमकती हुई प्रस्वेद की बूंदे और धड़कते हुए दिल ही चैतन्य की साक्षी देते थे। इसी तरह निमेष, काष्ठ, कला, क्षण आदि भागों को क्रमशः व्यतीत करके समय मुहूर्त में पहुंचा; इतने में कुशलसिंह ने कसेले कंठ की गम्भीर ध्वनि से शान्ति के परदे को चीरा और सब को मोह, विचार और खेद की निद्रा से जगाया; महाराजा भी कुछ पीछे हट कर खड़े हुए; प्रत्येक कान के परदे पर शब्द टकराने लगे कि "नरराजशिरोमणि! मुझसे भोक्ता का अदृष्ट ही आप से तेजस्वी राजा, ऋषि, मुनि, देव आदि के सत्यपवित्र मुख से शब्दरूप में स्वतः निकलकर उन्हें शाप शासन में निमित्त बनाता है, तथापि वे निस्सङ्ग हैं, निर्दोष है, अभ्रान्त हैं। आपकी सुराजकता की मुद्रा प्रजा के हृदय पर पड़ चुकी है, आपके बुद्धि वैभव पर औरङ्गज़ेब जैसा शाहनशाह भी चकित हो चुका है। आर्यमात्र ने आपके विजयी भुजों पर आशा बांधी है, यही सब सुनकर मैं अपने को कृतकार्य मानता हूं; भयङ्कर कारागार में भी हर्ष से रोमाञ्चित होता हूं, सुख से निद्रा लेता हूं। और कुशलसिंह के शब्द आगे बढ़ते ही थे कि बीच में महाराज की गद्गदवाणी निकली और कुशलसिंह के ओष्ठपुट बन्द हुए। महाराजा ने कहा "हा! मेरे नेत्रों का तिमिर अब छूटा और देखता हूं तो संसार में ऐसा कोई प्रियपदार्थ नज़र नहीं आता कि जिसके देने से शिष्य गुरु से उऋण हो सकता हो। इसपर भी हज़ार धिक्कार पड़े इस प्रमादी राज-

* उन दिनों में यह नियम था कि कैदी को भोजन के लिये नगर में घर घर भीख मांगनी पड़ती थी और पात्र के स्थान एक ठीकरा यानी फूटा हुआ मिट्टी का बरतन दिया जाता था।

† जयपुर के राज्यभर को ढूंढाहड़ कहते हैं।

सत्ता पर कि जिससे मदान्ध होकर मैंने आपके साथ यह बरताव किया। प्रिय कुशलसिंह जी! विद्या दे देने पर गुरु का हक लेने का होता है, परन्तु मैं अभागा फिर भी आप से मांगता ही हूं कि मेरे इस कृतघ्न कर्म पर क्षमा–" इतना कहते कहते हृदय ने उबक कर कंठ रोकलिया; केवल प्रजापालक हाथों ने वह ठीकरा उठाकर गिरादिया और बहुत बड़े सम्मान एवं जागीर के साथ अपने सच्चे शिक्षक कुशलसिंह नाथावत को सुखी कर दिया। इस तरह परम गुणग्राही महाराजा सवाई जयसिंह जी ने परिणाम में सच्ची गुरुभक्ति दिखा कर भारत को जयघोष से भर दिया, जिसकी प्रतिध्वनि आज दो सौ वर्ष पर भी लाखों कर्णमण्डलों में आघात प्रत्याघात कर रही है।

कुँवर केसरीसिंह बारहट।

---

## महामहोपाध्याय कविवर विद्यापति ठाकुर

मिथिला एक समय विद्या की जननी कही जाती थी। देश देशान्तर से लोग यहां पढ़ने आते थे। कौन गाँव ऐसा था जहां दस पांच अच्छे अच्छे पण्डित नहीं बसते थे। परन्तु बड़े खेद का विषय है कि उनके वंशज लोग अब मूर्ख हुए जाते हैं। इससे बढ़ के और प्रमाण शास्त्रचर्चा का क्या होगा कि दरभङ्गा राज्य विद्याही से उपार्जित है। इसी मिथिला में हमारे इस लेख के नायक महामहोपाध्याय विद्यापति हो गए हैं, जिन्होंने संस्कृत में बहुत से ग्रन्थों की रचना की और मिथिला भाषा में ऐसे उत्तम उत्तम गीत बनाए जिन को आवाल-वृद्ध-बनिताएं बड़े अनुराग से गाया करती हैं। बङ्ग में भी इनका सुयश फैला हुआ है और इनके बनाए गीतों का (शब्दों को कुछ बिगाड़कर) वहां भी प्रचार है, और बहुत से बङ्गदेशीय विद्वान् इनको स्वदेशवासी कह के अपनाते हैं। परन्तु "बङ्गदर्शन" के द्वितीय वर्ष की द्वितीय संख्या में "विद्यापतिप्रसङ्ग"–शीर्षक लेख से जो बाबू यदुनाथ चक्रवर्ती ने लिखा है, स्पष्ट प्रमाणित होता है कि वे मैथिल थे। ग्रीयर्सन साहब ने भी (An Introduction to Mithila Language) ठीक किया है कि विद्यापति मैथिल थे। परन्तु सबसे बढ़के तो मुझे यह प्रमाण मिला है कि उनके वंश में अभी बहुत से लोग जीवित हैं, जिनका कुल-वृक्ष मैं इस लेख के साथ प्रकाशित करता हूं, और जिनकी कीर्ति अभी तक मिथिला में सर्वत्र विद्यमान है।

बड़ा दुर्भाग्य इस भारतवर्ष का है कि इस देश के महात्मा कवि पण्डितों का प्रमाणसहित जीवन-वृत्तान्त मिलना अत्यन्तदुस्साध्य हो गया है। जो किसीको उन लोगों की जीवनी लिखने की इच्छा भी हुई तो प्रथम परिश्रम करने पर भी सामग्री ही नहीं मिलती, दूसरे दन्तकथा के रूप में कुछ मिलती भी है तो ऐसी कि जिससे स्वयं सन्तोष नहीं होता, तो लेखक दूसरे को कैसे सन्तोष दिला सकता है। जन्मतिथि की क्या कथा? किस समय में कौन महात्मा कवि आदि विद्यमान थे, यह निर्णय करना भी अत्यन्त कठिन सा हो जाता है। यह अवस्था तो साधारण भारतवर्ष की है। परन्तु मिथिला की दशा तो और भी शोचनीय है, तथापि विद्यापति के विषय में मुझे जहां तक ठीक ठीक हाल मिला है, इस लेख में प्रकाशित करूंगा। मुझे पूरा विश्वास है कि विद्यापति के विषय में यथार्थ हाल जो मुझे प्राप्त हुआ है, उससे अधिक विशेष परिश्रम करने पर भी प्रायः किसीको न मिलेगा।

विद्यापति का जन्म किस तिथि और संवत में हुआ, यह तो ठीक नहीं मिलता; परन्तु उनके विद्यमान रहने का समय ई० १३०० शताब्दी के अन्त से लेकर ई० १४०० शताब्दी के ५० वर्ष के लगभग तक प्रमाणित होता है, क्योंकि सन् १३२६ ई० से राजा हरसिंहदेव के अनन्तर मिथिला का राज्य

विष्णु ठाकुर

हरादित्य ठा०

कर्म्मादित्य ठा०

भवादित्य ठा० ( राजवल्लभ )
शिवादित्य ठा० ( सान्धिविग्रहक )

वीरेश्वर ठा० (छन्दोगदशपद्धतिकर्ता)
धीरेश्वर (महावार्तिक नैबन्धिक)
गणेश्वर (महामत्तक)
जटेश्वर (भांडागारिक)
हरदत्त (स्थानान्तरिक)
लक्ष्मीश्वर (मुद्राहस्तक)
शिवदत्त (रा० व० )

चंडेश्वर ( सा० वि० महामहत्तक सप्तरत्नाकर तथा कीर्तिचिन्तामणि ग्रन्थ रचयिता )
कीर्ति ठा०
जयदत्त ठा०
रामदत्त उपाध्याय (वाजसनेयिदशकर्म पद्धतिकर्त्ता)

रीर्पति
गणपति ठा०

विद्यापति ठा० कवि
( महामहोपाध्याय रा० पं० सान्धिविग्रहिक विस्पीग्रामोपार्जक )

वाचस्पति
हरपति ( म० हरदत्त-दैवज्ञबान्धव ग्रन्थकर्ता )
नरपति

नोनैठाकुर ( प्रसिद्ध रतिधर )

रघु ठा०

विश्वनाथ ठा०

पीताम्बर ठा०

अच्युत ठा०
नारायण ठा०
मोहन ठा०

लक्ष्मण ठा०
देवानन्द ठा०
दिनमणि ठा०
भिखारी ठा०
चकोर ठा०

तुला ठाकुर

जीवनाथ ठा०
एकनाथ ठा०

भैया ठा०

बाबूलाल ठा०
प्यारे ठा०
दुलार ठा०
नन्नू ठाकुर ( वैयाकरण )
फणीलाल ठा०

लक्ष्मीनाथ ठा०
निरसू ठा० (जीवित)

टेकनाथ
मोहन

वनमाली ठा०
विश्वेश्वर
महेश्वर ( जीवित )

मनोहर
बदरीनाथ ठा० ( जीवित )
श्रीधर ( जी० )

विन्ध्यनाथ
ब्रजधर

मैथिल ब्राह्मण के हाथ में आया और उन्हीं राजवंश में विद्यापति के पूर्व पुरुष भी परम्परा से राजपण्डित होते आए। कुलवृक्ष में दी हुई उपाधियों से पाठकों को स्पष्ट विदित होगा कि विद्यापति के पूर्वपुरुष राज दरबार में कैसे सम्मानित पण्डित थे–यथा सन्धिविग्रहिक शिवादित्य ठाकुर, अर्थात् ये मन्त्री के कार्य्य पर नियुक्त थे और उनके ज्येष्ठ पुत्र पाण्डागारिक बीरेश्वर ठाकुर, छान्दोग दशकर्मपद्धतिकर्ता हुए। बीरेश्वर ठाकुर के पुत्र चण्डेश्वर ठाकुर ने भी सन्धिविग्रहिक और महामहत्तक उपाधि पाकर, कृत्यचिन्तामणि, कृत्यरत्नाकर, दानरत्नाकर, व्यवहाररत्नाकर, पूजारत्नाकर, विवादरत्नाकर, श्राद्धरत्नाकर, और गृहस्थरत्नाकर, इन आठ ग्रन्थों की रचना की इत्यादि। राजा शिव सिंह ने, जो उनको बहुत मानते थ, सन् १४०३ ई० में उन को, उनके और उनके पूर्वपुरुषों के रहने का ग्राम विस्पी ( जो अब विसफी के नाम से प्रसिद्ध है ) था, दान करके दे दिया। यह ग्राम दरभङ्गे जिले में अभी तक विद्यमान है। वहां अभी तक विद्यापति की कुलदेवी विश्वेश्वरी देवी का मन्दिर और उनकी पाठशाला का चिन्ह विद्यमान है। राजा शिवसिंह का दिया हुआ दानसूचक पत्र अभी तक उनके वंशजों के पास है; उसमें यह लिखा है–

"स्वस्ति गजरथपुरात् समस्तप्रक्रियाविराजमान श्रीमद्रामेश्वरीवरलब्धप्रसाद भवानीभवभाक्तिभावनपरायण रूपनारायण महाराजाधिराज श्रीमच्छिवसिंहदेवपादाः समरविजयिनः। जरइल तप्पायां विस्पीग्राम वास्तव्य सकललोकान् भूकर्षकांश्च समादिशन्ति मतमस्तु भवताम्। ग्रामोयमस्माभिः सप्रक्रियाभिनवजयदेव महाराज पण्डित ठक्कुर श्रीविद्यापतिभ्यः शासनी कृत्य प्रदत्तोऽतोऽयमेतेषां वचनकरी भूयकर्षणादिकं कर्म्म करिष्यथ इति ल० सं० २९३ श्रावण शुक्ल सप्तम्यां गुरौ॥

श्लोकास्तु।

अब्दे लक्ष्मणसेन भूपतिमते वह्निग्रहद्व्यङ्किते।
मासि श्रावण संज्ञके मुनितिथौ पक्षेवलक्षे गुरौ॥
वाग्वत्या स्सरितस्तटे गजरथेत्याख्य प्रसिद्धे पुरे।
दित्सोत्साह विवृद्ध बाहुपुलकः सभ्यायमध्ये सभम्॥१॥

प्रज्ञावान् प्रचुरोर्वरं पृथुतरा भोगं नदी मातृकं।
सारण्यं ससरोवरं च विसपी नामानमासीमतः॥
श्री विद्यापति शर्म्मणे सुकवये वाणीरसस्वादविद्।
वीर श्री शिवसिंह देव नृपतिर्ग्रामं ददे शासनम्॥२॥

येन साहसमयेन शस्त्रिना तुङ्गवाहवरपृष्ठवर्तिना।
अश्वपत्तिवलयोर्वलंजितं गज्जनाधिपति गौड भूभुजाम्॥३॥

रौप्य कुम्भइव कज्जलरेखा श्वेतपद्म इव शैवल वल्ली।
यस्य कीर्ति नवकेतककान्त्याम्लानि नीतिविजितो हरिणाङ्कः॥४॥

द्विषन्नृपति वाहिनी रुधिर वाहिनी कोटिभिः।
प्रतापतरुवृद्धये समरमेदिनी प्लाविता॥
समस्तहरिदङ्गनाचिकुर पाशवासः क्षमं।
सित प्रसवपाण्डरं जगति येन लब्धं यशः॥५॥

मतङ्गजरथप्रदः कनकदानकल्पद्रुमः।
तुलापुरुषमद्भुतं निजधनैःपिता दापिताः॥
अखानि च महात्मना जगति येन भूमीभुजा।
परापर पयोनिधि प्रथममैत्रपात्रं सरः॥६॥

नरपतिकुलमान्यः कर्णशिक्षावदान्यः।
परिचितपरमार्थो दानतुष्टार्थसार्थः॥
निजचरित पवित्रो देवसिंहस्य पुत्रः।
स जयति शिवसिंहो वैरिनागेन्द्रसिंहः॥७॥

ग्रामेगृह्णन्त्यमुष्मिन् किमपि नृपतयो हिन्दवो ये तुरुष्काः।
गोकोलस्वात्ममांसे सहितमनुदिनं भुञ्जते ते स्वधर्मम्॥
ये चैनं ग्रामरत्नं नृपकररहितं पालयन्ति प्रतापैः।
तेषां सत्कीर्तिगाथा दिशिदिशि सुचिरं गीयतां वन्दिवृन्दैः॥८

संस्कृत गद्य का अनुवाद

गजरथ पुर से समस्त राजकीय पदार्थों से विराजमान श्रीरामेश्वरी भगवती के वर से लब्धप्रसाद; गौरीशङ्कर के परमभक्त रूपनारायण पदभूषित महाराजाधिराज श्रीमान् शिवसिंह देवजू समरविजयी, जरइलतप्पान्तर्गत विसपी ग्रामवासी सब लोगों और कास्तकारों को आज्ञा देते हैं। आप लोगों को ज्ञात हो कि यह ग्राम हमने सत्कर्म्मशील नूतनजयदेव राजपण्डित श्रीविद्यापति ठाकुर को शासनसहित प्रदान किया। इसलिये तुमलोग इनकी आज्ञा के वशवर्ती हो खेती इत्यादि सब काम करोगे।

श्लोकों का अनुवाद।

राजा लक्ष्मणसेन के प्रचारित सन २९३ में–अर्थात्–सन् १४०२ ई० में, सावन सुदि सप्तमी

बृहस्पतिवार को वाग्वतीनदी के किनारे गजरथपुर (शिवसिंहपुर) प्रसिद्ध गाँव में दानेच्छा के उत्साह से जिनका दीर्घबाहु पुलकायमान हो रहा है, जो अत्यन्त बुद्धिमान् और विद्यारसिक हैं, उन वीर-धीरशिरोमणि महाराज श्रीशिवसिंह देवजू ने सभा के बीच में कविवर श्रीविद्यापति ठाकुर को अत्यन्त उपजाऊ अधिकतर भोग्यपदार्थदेनेवाला नदीगर्भित जङ्गल और झीलों से सहित सीमा-वन्दी करके बिसपी नाम ग्राम और उसके शासन का भार दिया ॥ १, २ ॥ महाराज शिवसिंह, जो अत्यन्त साहसी और शस्त्रकुशल थे, जिन्होंने बड़े ऊंचे मदोन्मत्त मतङ्ग पर सवार हो अपने पराक्रम से गज़नी के पादशाह और गौड़देशीय राजाओं के घुड़सवार सेनापतियों के सहित समस्त सेनाओं को जीत लिया ॥ ३ ॥ चाँदी के घड़े में काजर की रेख और श्वेतकमल में सेवाँर की लता जैसे फीकी लगती है, तैसे ही महाराज शिवसिंह की उज्ज्वल कीर्ति रूपी नवीन केतक की छटा से पराजित हो मृगाङ्क (चन्द्रमा) मलिन भासता है ॥ ४ ॥ जिन्होंने वैरी नृपसेनाओं की कोटिशः रुधिरनदियों से अपने प्रतापरूपी वृक्ष की वृद्धि के लिये युद्धभूमि को सिञ्चित किया, और समस्त दिगङ्गना की चोटियों के आच्छादन योग्य, विजयविनिर्गत उज्ज्वल यश इस संसार में पाया ॥५॥ जिन्होंने, हाथी, रथ और स्वर्णादिक दान में कल्पद्रुम के समान अपने पिता को अपने धन से अद्भुत तुलादान कराया, और जिन महात्मा महाराज शिवसिंह ने इस भूमण्डल में पूर्वीय और पश्चिमदिग्वर्ती समुद्रों का प्रथम मैत्रपात्र स्वरूप सरोवर खुदवाया ॥६॥ जो राजाओं में महामान्य कर्ण के शिक्षा देने योग्य बड़े दानी, परमार्थवेत्ता, दान से याचकसमूहों को तुष्ट करनेवाले, अपने चरित्र को पवित्र रखनेवाले और शत्रुरूपी गजेन्द्रों में सिंह के समान वंरतनेवाले हैं। सो देवसिंहात्मज शिवसिंह जय पावें ॥ ७ ॥ हिन्दू अथवा मुसलमान जो कोई राजा इस बिसपी गाँव से कुछ ग्रहण करेंगे तो वे गाय, शूकर, और अपने शरीर के मांस सहित सर्वदा अपने धर्म को खाँयगे और जो अपने प्रताप से इस राजकीय कररहित ग्राम को पालेंगे उनकी सत्कीर्ति का गान चारों ओर बहुत दिनों तक बन्दीगनों से गाया जायगा ॥ ८ ॥

इस दानपत्र के विषय में एक अपूर्व दन्तकथा मिथिला में प्रचलित है। वह यह है कि जब ईस्ट इंडिया कम्पनी मिथिला का प्रबन्ध कर रही थी, उस समय इनके वंशजों ने अपनी मुआफी के लिये यह ताम्रपत्र सुबूत में दिखलाया था। परन्तु अङ्गरेज ने इस बिसफी ग्राम पर मालगुजारी लगा ही दी। हाकिम सेट्लमेन्ट ने कहा कि समयानुसार अङ्गरेज गाय और शूकर दोनो खाते हैं, इसलिये वे इस शपथ से बाध्य नहीं हो सकते।

विद्यापति, राजा कीर्तिसिंह की सभा में पहिले नियुक्त थे। उनके अनन्तर उन्होंने राजाशिवसिंह, उनकी रानी लखिमा, उनके छोटे भाई राजा पद्मसिंह, और इनकी रानी विश्वासदेवी, तथा राजा भैरवसिंह के आश्रय में रह कर अपनी कीर्ति फैलाई। कोई कोई उनको राजा शिवसिंह के पितामह के समय में कवि के पद पर नियुक्त बतलाते हैं। परन्तु मेरी समझ में यह बात ठीक नहीं जचती, क्योंकि राजा शिवसिंह के पितामह भवसिंह ने अपने भाई से राज्य बंटवा लिया था और राजा शिवसिंह के छोटे चचा राजा हरसिंह और त्रिपुरसिंह ने अपने चचेरे भाई गणेश्वरसिंह को मार कर पूरा राज्याधिकार प्राप्त कर लिया था, तथा राजा गणेश्वरसिंह के पुत्र राजा कीर्तिसिंह ने त्रिपुरसिंह को हरा कर राज्य ले लिया, और उनके अपुत्र होने के कारण उनके पितामह भ्राता राजा भवसिंह के पौत्र, राजा शिव-सिंह अपने पिता देवसिंह की जीवित अवस्था ही में युवराज हुए। यदि वे (विद्यापति) भवसिंह के समय में होते तो प्रथम उनके पुत्र त्रिपुरसिंह को अपने चचेरे भाई की हत्या से अवश्य रोकते, अथवा उनके यहाँ से चले जाते। परन्तु ऐसा उनके दरबार छोड़ जाने आदि का हाल कहीं लिखा हुआ नहीं मिलता।

दूसरे यदि वे त्रिपुरसिंह अथवा उनके सगे बड़े भाई राजा शिवसिंह के पिता राजा देवसिंह की सभा में रहते तो कीर्तिसिंह और त्रिपुरसिंह में शत्रुता रहने के कारण कीर्तिसिंह की सभा में वे कदापि नहीं जाते। परन्तु उन्होंने कीर्तिसिंह के कीर्तिवर्णन में कीर्तिलता नामक ग्रन्थ बनाया है जो अभीतक विद्यमान है और यही उनका बनाया पहिला ग्रन्थ है।

जिस समय राजा कीर्तिसिंह राज्य करते थे, उस समय राजा शिवसिंह वयःप्राप्त हो चुके थे और स्वयं विद्योत्साही और गुणग्राही होने के कारण यह संभव है कि युवराज होतेही उन्होंने अपने पिता राजा देवसिंह के समय में विद्यापति को सादर अपनी सभा में रख लिया हो और अपने पिता के देहान्त होते ही राज्य पाकर बिसपी ग्राम उन्हें दान करके दे दिया हो*।

यद्यपि उनके बनाए बहुत से श्लोक राजा भवसिंह आदि के प्रशंसाविषयक पाए जाते हैं, परन्तु इससे यह नहीं कह सकते कि वे भवसिंह के समय में कविता करने लग गए थे; क्योंकि जिनके यहां वे सपरिवार पालित होते थे, उनके पूर्वजों का यशोगान करना उनका धर्म था और उन्होंने उन पूर्वजों की कीर्ति वर्णन कर अपनी कृतज्ञता प्रगट की। मिथिलाभाषा के अनेक गीतों से यह विदित होता है कि वे राघवसिंह ( राजा शिवसिंह के भाई का पुत्र ) के समय तक जीवित थे, क्योंकि उनके नाम का उल्लेख उनके गीतों में है। परन्तु यह विदित नहीं होता कि वे दरबार में रहकर उस काल में काज करते थे अथवा घर बैठ कर हरिभजन में अपना समय विताते थे। इतना तो निश्चय है कि वे दीर्घजीवी हुए। यद्यपि उनके जन्ममरण की तिथि ज्ञात नहीं होती, तथापि उनके ८०, ९० वर्ष के लगभग जीने में कोई सन्देह नहीं है। कीर्तिसिंह के राजत्वकाल से लेकर राजा भैरवसिंह के राजत्वसमय तक लगभग ४० वर्ष तक उनके दरबार में रहने का प्रमाण मिलता है, और उसके अनन्तर वे अपने घर रह कर इस राज्य की शुभचिन्तना करने लग गए हों तो कुछ आश्चर्य नहीं है

उनके बनाए हुए निम्नलिखित ग्रन्थ अब तक भी कहीं कहीं पाए जाते हैं—

(१) कीर्तिलता—यह ग्रन्थ उनके सब ग्रन्थों से पहिले का बना हुआ है जिसको उन्होंने राजा कीर्तिसिंह की प्रशंसा में रचा था। मैं इस ग्रन्थ की खोज में हूं, परन्तु अभी तक नहीं मिला है।

मुझे कीर्तिलता के आदि के पांच श्लोक मिले हैं सो नीचे लिखता हुं।

पितरुपनयमह्यं देवनद्यामृणालं
नहितनय मृणालः किन्त्वसैा सर्पराजः।
इति वदति गणेशे स्मेरवक्त्रे च शम्भौ
गिरिपतितनया याः पातु कैातूहलं वः ॥१॥

शशिभानु वृहद्भानुस्फुरत्त्रितय चक्षुषः।
वन्दे शम्भोः पदाम्भोजमज्ञानतिमिर द्विषः ॥२॥

ब्राः सर्वार्थसमागमस्थ रसना रङ्गस्थलीनर्तकी।
तत्वालोकविलोकनध्वजशिखा वैदग्धविश्राम भूः
शृङ्गारादि रसप्रवाहलहरी स्वर्लोककल्लोलिनी॥
कल्पान्तस्थिरकीर्तिसम्भ्रमसखी सा भारती पातु वः
॥ ३ ॥

श्रोतुर्वक्तूर्वदान्यस्य कीर्तिसिंहमहीपतेः।
करोति कवितुः काव्यं भवी विद्यापतिः कविः ॥४॥

भासमस्तकनिवासपेशला भूतभावरमणीय भूषणा।
कीर्तिसिंह नवकीर्तिकामिनी यामिनीपतिकलां
जिगीषति ॥ ५ ॥

भावार्थ—

गणेश ने महादेव से कहा कि हे पिता! यह गङ्गा का कमलनाल मुझ को दीजिए; महादेव ने कहा हे पुत्र! यह मृणाल नहीं है, किन्तु शेष है; इस प्रकार गणेश और प्रसन्नमुख महादेव की बात चीत में गिरिजा को जो कैातूहल हुआ सो आपको पाले॥१॥

* राजा शिवसिंह का पूरा हाल मैं कालान्तर में उनके वंश के संक्षिप्त वृत्तान्त सहित लिखूंगा। राजा देवसिंह के मरने के चारमास अनन्तर विद्यापति को बिसफी ग्राम मिला था।

चन्द्रमा, सूर्य्य ग्रौर अग्नि ये ही तीन जिनके प्रकाशमान नेत्र हैं ग्रौर जो शिव अज्ञानरूपी अन्धकार के नाशक हैं, उनके चरणकमल की मैं बन्दना करता हूं ॥ २ ॥

सब अर्थों का समागमरूप जो मुखद्वार उसमें स्थित जिह्वा रङ्गशाला में नृत्य करनेवाली; तत्व विचार प्रदर्शन पताका है जिनकी; जो चातुर्य का विश्राम धाम, श्रृङ्गारादि रसों के प्रवाह की लहरी में गङ्गा के सदृश कल्लोल करनेवाली है; जो स्थिर कीर्ति की प्रिय सखी हैं, सो सरस्वती ग्रापका पालन करें ॥ ३ ॥

सुनने ग्रौर समझनेवाले परम उदार स्वयं कवि जो महाराज कीर्तिसिंह हैं उनका काव्य भवीकवि विद्यापति बनाते हैं ॥ ४ ॥

भासमान पदार्थों के मस्तकों पर निवास करने में चतुर ऐश्वर्य ग्रौर ग्रादर है भूषण जिसको, ऐसी, राजा कीर्तिसिंह की नवीन कीर्ति रूपा कामिनी चन्द्रमा की कला को जीतना चाहती है। क्योंकि चन्द्रकला भी शिव के दीप्तमान मस्तक पर रहनेवाली है ग्रौर विभूति की स्थिति से रम्य शोभास्पद है ॥ ५ ॥

(२) पुरुषपरीक्षा—इस ग्रन्थ में चार परिच्छेद हैं ग्रौर ४४ कथाएं हैं। कथा के छल से धर्मनीति ग्रौर राजनीति ग्रादि विषयों का वर्णन बहुत ही उत्तम रीति से किया है ग्रौर इसमें श्रृङ्गार रस की प्रधानता रहने के कारण युवापुरुषों के पढ़ने ग्रौर उससे शिक्षालाभ प्राप्त होने का ग्रच्छा ढङ्ग रक्खा गया है। यह ग्रन्थ महाराज बहादुर दरभङ्गा की ग्राज्ञा से मैथिल कवि श्रीचन्दा झा कृत नवीन मिथिलाभाषानुवाद सहित छप चुका है।

(३) लिखनावली-इसमें किस रीति से किसको पत्र लिखना चाहिए यही वर्णित है। उसमें का एक पत्र शिष्य की ग्रोर से गुरु के लिखने का मिला है। परन्तु मैं उसको भ्रमास्पद जान यहां पर उद्धृत न कर सका। यद्यपि इस समय पत्रलेखनप्रणाली पूर्वकालिक रीति से सर्वथा बदल गई है, तथापि इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि पत्रलेखनरीति को उस समय के लोग भी एक शिक्षा का विषय समझते थे। बड़े खेद का विषय है कि इन दिनों मिथिला में लिखने की परिपाटी बहुत कम पाई जाती है, यहां तक कि बहुत से पण्डितों को ग्रपना नाम लिखना कष्ट बोध होता है।

(४ शैवसर्वस्वसार—यह ग्रन्थ रानी विश्वास देवी के ग्राज्ञानुसार बना है। इसमें राजा भवसिंह से ग्रारम्भ करके रानी विश्वासदेवी तक जितने राजा हुए, सबों का यश वर्णित है; केवल रानी लखिमा का कुछ वर्णन नहीं है, कारण उसका यह है कि रानी लखिमा के समय में राजकार्य बिलकुल विद्यापति के हाथ में था। इससे उन्होंने कुछ नहीं लिखा, क्योंकि यदि कुछ ग्रच्छा लिखते तो ग्रात्मप्रशंसा होती ग्रौर यदि कुछ ग्रप्रशंसा लिखते तो स्वकर्म की निन्दा होती, इस से कुछ नहीं लिखना ही ग्रच्छा जाना। परन्तु यह किम्वदन्तीमात्र है। जब तक मुझे कीर्तिलता ग्रौर शैवसर्वस्वसार ये दोनो ग्रन्थ नहीं मिलेंगे, तब तक इस विषय के सत्यासत्य पर मुझे सन्देह ही बना रहेगा; क्योंकि कीर्तिलता के विषय में भी कोई कोई यह बात कहते हैं। शैवसर्वस्वसार के जो कई श्लोक मिले हैं उन्हें ग्रनुवाद सहित लिखता हूं—

श्लोकाः।

गङ्गोत्तुङ्गतरङ्गितामललसत्कीर्त्तिच्छटा क्षालिता
क्षोणीक्ष्मातल सर्व पर्व्वतवरो वीरव्रतालंकृतः।
भूपालावलि मौलिमण्डलमणि प्रत्यर्च्चितांघ्रिद्वयाऽ
म्भोजश्रीभवसिंह भूपतिरभूत्सर्वार्थकल्पद्रुमः ॥ १ ॥

दृप्यद्दुर्व्वार वैरिद्विपकुल दलनाकुण्ठकुण्ठीरवश्री
रासीमाशेष भूभृन्मणि मुकुटतटज्योतिरुद्योतितांघ्रिः।
तत्सूनुः पुण्यकीर्तिर्नयविनयदयादानदाक्षिण्यदक्षो
वृक्षः सर्वाश्रितानां मिथिल भुवि नृपो देवसिंहो बभूव ॥२॥

दत्तं येन द्विजेभ्यो द्विरदरथ महादानमन्यैरशक्यं
कावार्तात्वन्य दानेकनकमयतुला पूरुषो येन दत्तः।

यस्यक्रीड़ातड़ागस्तु लयति सततं शासने वारिराशिं
देवौऽसौ देवसिंहः क्षितिपतितिलकः कस्य न स्यान्नमस्यः ॥३॥

क्षोणीभर्तुरमुष्यवैरिवनितावैदग्ध्यदीक्षागुरोः
सम्भूतः शिवसिंहदेवनृपतिर्वीरावतंसः सुतः ।
शौर्यावर्जितगौडगज्जनमहीपालोपनम्रीकृताऽ
नेकोत्तुङ्गमतङ्गजाश्वकनकच्छत्राभिरामोदयः ॥ ४ ॥

संग्रामाङ्गणसीमभीमसदृशस्तस्यानुजः संलसद्-
दानस्वल्पितकल्पवृक्षमहिमाऽसौ पद्मसिंहो नृपः ।
कैलासोदरसोदरीयति शरद्राका शशाङ्कीयति
प्रालेयाचल शेखरीयाति यशो यस्यारविन्दीयति ॥ ५ ॥

विद्यामंगिरसः सुतस्य विनयं रामस्य वृत्तं मुनेः
शौर्यं सूर्यसुतस्य धैर्यमवनेर्गाम्भीर्यमम्भोनिधेः
दानं दानवनन्दनस्य सकलं सारं समुच्चिन्वता
धात्रा यः शरदिन्दुसुन्दर यशाः क्षोणीपतिर्निर्मितः ॥६॥

दुग्धाम्भोधेरिव श्रीर्गुणगणसदृशे विश्वविख्यातवंशे
सम्भूता पद्मसिंहक्षितिपतिदयिता धर्मकर्म्मैकसीमा ।
पत्युः सिंहासनस्था पृथुमिथिलमहीमंडलंपालयन्ती
श्रीमद्विश्वासदेवी जगति विजयते चर्ययांऽरुन्धतीऽव ॥७॥

इन्द्रस्येव शची समुज्ज्वलगुणा गौरीऽव गौरीपतेः
कामस्येव रतिः स्वभावमधुरा सीतेव रामस्य या
विष्णोः श्रीरिव पद्मसिंहनृपतेरेषा पराप्रेयसी
विश्वख्यातनया द्विजेन्द्रतनया जागर्ति भूमंडले ॥ ८ ॥

नैकोऽपि प्रथितः प्रदान यशसो विश्वासदेव्यासमो
दातारः कति ना भवन् कति न वा सन्तीह भूमंडले
यस्याः स्वर्णतुलामुखाखिलमहादानप्रदानांगणे ।
स्वर्गग्राममृगीदृशामपि तुला कोटिध्वनिः श्रूयते ॥ ९ ॥

लीलालोलावनाली द्विजनिचयदलद् वीचिविन्यस्तभार-
प्रव्यक्तोन्मुक्तमुक्ता तरलतरतरद् द्वन्द्वसन्दोहवाहुः ।
पुष्पत्पुष्पौघमालाकुलकलित लसद् भृगसंगीतसंगी
श्रीमद्विश्वासदेव्या समरुचिरुचिरो विश्वभागस्तड़ागः ॥१०॥

नित्यं देवद्विजार्थं द्रविणवितरणारम्भसम्भावितश्रीः
धर्मज्ञा चन्द्रचूड़ प्रतिदिवस समाराधनैकाग्रचित्ता
विज्ञाऽनुज्ञाप्य विद्यापति कृतिनमसौ विश्वविख्यातकीर्तिः
श्रीमद्वि श्वासेदवी विरचयति शिवं शैवसर्वस्व सारम् ॥ ११ ॥

प्रमाणमूला नवपल्लवाढ्या सपुष्पिका रम्यफलोपपन्ना
अभिष्टसिद्ध्यै विबुधैरुपेया वाक्यावली कल्पलतेव शोभा१२

## भावार्थ

जिनने गङ्गा की प्रबल तरङ्ग के समान निर्मल सत्कीर्ति की छटा से सम्पूर्ण भूमण्डल के स्थल और पर्वतों को स्वच्छ कर दिया, जिनके चरणकमल नृपसमूहों के मणिमय शिरोभूषण से पूजे जाते थे, ऐसे वीर विभूषण समस्त याचकों के कल्पवृक्ष श्रीभवसिंह राजा हुए ॥ १ ॥

उनके पुत्र, जो हाथियों के झुण्ड के समान, अभिमान से फूले हुए दुर्धर्ष वैरियों के दलन करने में सिंह के समान पराक्रमी थे, और जिनके चरण सीमावर्त्ती समस्त राजाओं के मणिमय मुकुट की ज्योति से विद्योतित होते थे; जो न्याय, नम्रता, दया, दान, और दाक्षिण्य में प्रवीण थे; जो आश्रितों को वृक्षवत् सुखद थे और पवित्र कीर्तिमान् थे, सो देवसिंह मिथिला के राजा हुए ॥ २ ॥

जिन्होंने ब्राह्मणों को औरों से न होने योग्य गजरथ, महादान, और स्वर्णमय तुला पुरुष का दान दिया, जिनका खुदवाया क्रीड़ातड़ाग समुद्र की तुलना करता है, ऐसे राजाओं के तिलक देवसिंह किसके प्रणम्य न हुए ॥ ३ ॥

शत्रुओं की स्त्रियों को उत्तप्त करने में बड़े ही कुशल इस (देवसिंह) राजा के पुत्र शिवसिंह देव हुए। ये बड़े वीर थे जिन्होंने अपनी वीरता से गौड़ और गज़नी के राजाओं को पराजित कर उनसे अनेक अनेक बड़े बड़े हाथी, घोड़े, और सोने का छत्र दण्ड ले अभ्युदय लाभ किया ॥ ४ ॥

इनके छोटे भाई राजा पद्मसिंह हुए, जो समर भूमि में भीम के समान पराक्रमी थे और जिन्होंने अपने दान से कल्पवृक्ष के महत्व को न्यून कर दिया, जिनका यश शरद ऋतु के पूर्णचन्द्र सदृश प्रकाशमान, हिमालय के समान स्वच्छ और कमल सा मनोरञ्जक हो चारो ओर फैला हुआ है ॥ ५ ॥

ब्रह्मा ने बृहस्पति की विद्या, रामचन्द्र का विनय, मुनि की वृत्ति, कर्ण की सूरता, पृथ्वी की धीरता, समुद्र की गम्भीरता, बलि की दानशक्ति, इन सब गुणों का संग्रह करके इस राजा को, जिसका यश शरद चन्द्रमा के समान शोभित होता है, बनाया ॥ ६ ॥

क्षीर समुद्र में जनमी हुई लक्ष्मी की ऐसी अनेक गुणों से विभूषित प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न, राजा पद्मसिंह की प्यारी स्त्री अरुन्धती सी पतिव्रता, श्रीमती विश्वासदेवी, अपने सिंहासन पर आरूढ़ हो सम्पूर्ण मिथिला देश को पालती हुई विजय पाती है ॥ ७ ॥

जैसे इन्द्र को शची, महादेव को पार्वती, कामदेव को रति, रामचन्द्र को सीता, विष्णु को लक्ष्मी बड़ी प्यारी हैं, तैसे ही यह विश्वविख्यात नीतिमती विश्वासदेवी उत्तम ब्राह्मण के कुल में जन्म ग्रहण कर राजा पद्मसिंह की प्रियतमा हो संसार में सावधानता से बरत रही हैं ॥ ८ ॥

संसार में बहुत से दानी हुए और हैं भी, परन्तु विश्वासदेवी के समान प्रसिद्ध दानशील कोई नहीं हुआ और न है;–जिनके सुवर्ण तुलादिक महादान करने के उद्यान में देवाङ्गनाओं के भी तुलादान की कोटि ध्वनि सुन पड़ती है, अर्थात् देवाङ्गनाएं भी विश्वासदेवी की देखा देखी तुलादान करना सीखती हैं ऐसा अनुमान होता है ॥ ९ ॥

श्रीमती विश्वासदेवी का खुदाया हुआ सुन्दर सरोवर इतना बड़ा है कि जिसका यह देश एक हिस्सा सा जान पड़ता है, जिस तड़ाग की जलराशि में नाना प्रकार के जलपक्षी क्रीड़ा पूर्वक मोती के समान स्वच्छ और चञ्चल तरङ्ग का भङ्ग करते दोनों डैनो से तैरते हुए क्याही अच्छे देख पड़ते हैं; और जिसमें अनेक प्रकार के फूले हुए पुष्पसमूहों पर सङ्गीतज्ञ के ऐसे मधुपगण गूँज गूँज कर गान करते हुए शोभायमान होते हैं ॥ ॥ १० ॥

जो अनुदिन देवता और ब्राह्मणों के निमित द्रव्य देना अपनी सम्पत्ति का मुख्य कर्तव्य समझती हैं, जो अत्यन्त चतुर और धर्मज्ञा हैं, जिसकी कीर्ति संसार में फैली हुई है, शिव की आराधना करने में जिसका मन सदा एकाग्र रहता है, वही यह श्रीमती विश्वासदेवी पण्डित विद्यापति को आज्ञा देकर उनसे शुभ शैवसर्वस्वसार ग्रन्थ बनवाती हैं ॥ ११ ॥

पण्डितों को चाहिए कि अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिये कल्पलता के सदृश प्रमाणमूल नवपल्लव सुन्दर फूल फलों से उपपन्न इस आख्यायिका का आश्रयण करें ॥ १२ ॥

दुर्गाभक्तितरङ्गिणी—इस ग्रन्थ को राजा भैरवसिंह की आज्ञा से बनाया था (इसी समय विविध विद्यानिष्णात पण्डित पक्षधरमिश्र मिथिला में हुए थे) ये पाँच ग्रन्थ उनके बनाए संस्कृत में पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त उक्त कवि ने मिथिला भाषा में अनेक कविताएं रचीं जिससे वे सर्वसाधारण में भी विख्यात हुए। बहुत से बङ्गाली तो उनको अपना देशवासी कह के परिचय देने लगे हैं और यथासाध्य मिथिला भाषा का अनुकरण करके उनके नाम से गीत रचना भी करने लगे हैं। जैसे अभी के अनेक हिन्दी के कुकवि अपना मन माना पद रच के सूरदास अथवा तुलसीदास का नाम ठोक देते हैं, वैसे ही विद्यापति के विषय में बङ्गालियों ने किया है। परन्तु जो कुछ हो, उनका नाम जितना मिथिला भाषा के गीतों से हुआ उतना संस्कृत के ग्रन्थों से कभी नहीं होता। मिथिला मे ऐसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, धनी, गरीब नहीं हैं जिनके यहाँ मुण्डन, उपनयन, और विवाहादि शुभकार्य के उत्सवों में विद्यापति के बनाए गीत नहीं गाए जाते हों। इन गीतों में ऐसा सुन्दर भाव और माधुर्य भरा हुआ है जिसके आगे और कविगणों की कविता फीकी सी जँचती है। मैं इनके बनाए दो तीन गीत उदाहरणस्वरूप इस लेख के अन्त में दे इस लेख को शेष करूंगा।

कितने लोग इन्हें वैष्णव कहते हैं, क्योंकि इन्हों ने राधाकृष्ण विषयक अनेक गीत बनाए हैं। परन्तु यथार्थ में विद्यापति शैव थे। उनके शिवविषयक गीत भी बहुत हैं और उनकी कुलदेवी भगवती हैं। इससे उनका वैष्णव होना कभी संभव नहीं है। शिवसर्वस्वसार, दुर्गाभक्तितरङ्गिणी के नाम से स्पष्ट अनुमान होता है जो उनकी भक्ति शिव और दुर्गाही में अधिक थी और उन्हींके वे उपासक थे। कवि के वंशज लोग जो अभी विद्यामान हैं शाक्त हैं।

विद्यापति के विषय में और भी अनेक बातें हैं जिनका उल्लेख मैंने यहां पर नहीं किया है, क्योंकि उन बातों का सम्बन्ध राजा शिवसिंह की वंशावली से है और मैं उनका वंशचरित्र लिखने के समय उन सब बातों का उल्लेख अवश्य करूंगा।

यों तो पण्डित लोग इनके चरित्र को पढ़ कर इनके विषय में क्या समालोचना करेंगे, यह मैं नहीं कह सकता; परन्तु मेरे विचार में तो वे एक अत्यन्त रसज्ञ, अपने समय के अद्वितीय पण्डित, धार्मिक और प्रेमिक थे। काव्यरचना में तो मानो वे काव्य के सृष्टिकर्ता ही हुए थे।

उनके समय में चन्द कवि के समय की ऐसी भाषा भी मिथिला में काव्य रचना के लिये प्रचलित थी जिसका उदाहरण उनका बनाया हुआ मैं एक छप्पय लिखता हूं—

पुरिस हुअड बलिराअ जासु करे कम्ह पसारिअ।
पुरिस हुअउ रहु तणय जेण रण रावण मारिअ॥
पुरिस भगीरथ हुअउ जेण णिय कुल उद्धरिअउ।
परसुराम पुण पुरिस जेण खत्तिअ खअ करिअउ॥
पुरिस पसंसओ राअ गुरु कीत्ति सिंह गाणेश सुअ।
जेसत्तु समर सम्माहि करिअप्पवैर उद्धरिअ धुअ॥१॥

विद्यापति मिथिला में एक, परम भक्तों में से हो गए हैं। लोक में ऐसी कथा है कि जब वे अपने बनाए गीत का गान करते थे तब शिव कोई न कोई रूप धर के अवश्य प्रत्यक्ष होते थे। यह भी मिथिला में प्रसिद्ध है कि जब वे बहुत रुग्न हुए और सबोंने उनके जीवन की आशा छोड़ दी तब वे गङ्गा के किनारे प्राण छोड़ने के इच्छुक हुए और लोग उनको पालकी में रख गङ्गातट ले चले। रात भर चलते चलते जब सवेरा हुआ तब उनकी आँखें खुलीं और पूछा कि गङ्गाजी अब कितनी दूर हैं? लोगों ने कहा चार कोस। तब उन्होंने कहा कि पालकी रक्खो मैं अब आगे न बढ़ूँगा। जब उनका पुत्र इतना कष्ट करके इतनी दूर आया तब वह मा होकर प्रेमवश अपने पुत्र को इस दुःख से उद्धार करने के लिये चार कोस तक भी न आसकेंगी। अवश्य आवेंगी। उनको आना होगा, नहीं तो उन्हें पुत्र की प्रतिज्ञाभङ्ग का पाप होगा, क्योंकि मेरा पण यही है कि गङ्गा की गोद में प्राणत्याग करूं। और मैं आसन्न मृत्यु हूं, चार कोस तक जाने में संभव है कि मेरे प्राण बाट ही में निकल जांय। अतः अब मैं यहां से आगे नहीं जा सकता, गङ्गाजी को अवश्य ही मेरी सुधि लेनी पड़ेगी। इतना कह वे ध्यान में लीन हो गए। इनके ध्यान लगाए घण्टा भर भी नहीं बीता कि गङ्गाजी बड़े वेग से लहर पर लहर लेती हुई दिखाई पड़ने लगीं और उनकी पालकी के निकट होके बहने लगीं। सब लोग चकित हो गए। कवि ने उनकी स्तुति की और प्रणाम किया और उनके गर्भ में बैठ भगवद्भजन करते करते थोड़े समय में वे इस असार संसार को छोड़ परलोक सिधारे।

सुना है कि गङ्गा वहां से अब ४--५ कोस दूर हट गई हैं। परन्तु वहां उनकी सूखी खाई अभी तक वर्तमान है और उनकी समाधि पर तत्क्षण एक शिवलिङ्ग अंकुरित हुए थे, जिनका मन्दिर अभी तक दलसिंहसराय स्टेशन के समीप मलकलीपुर नामक गाँव में इस कथन का प्रमाण दे रहा है।

मिथिला भाषा का गीत

नायिका से नायक बचन

सरस वसन्त समय भल पाओलि
दछिन पवन बहु धीरे

सपनहु रूप वचन एक भाषिय
मुख संदुरि करु चीरे ॥
तोहर वदन सम चाँद होअथि नहिँ
जैयो जतन विह देला ।
कैवेरि काटि बनावल नव कय
तैओ तुलित नहिँ भेला ॥
लोचन तूअ कमल नहिं भैसक
से जग के नहिं जाने ।
से फेरि जाय नुकैलाह जलभय
पंकज निज अपमाने ॥
भनहि विद्यापति सुन वर जैामति
ईसभ लछमि समाने ।
राजाशिवसिंह रूपनरायण
लखिमा दइ प्रति भाने ॥ १ ॥

सखी से नायिका वचन ।

कर कुच मण्डल रखलहुं गोए ।
कमल कनक गिरि झांपि न होए ॥
हरख सहित हेरलहुं मुख काँति ।
पुलकित तन मोर धरकत भाँति ॥
तखन हरल हरि अञ्चल मोर ।
रस भर ससरु कसनि केर डोर ॥
सपना एक सखि देखल मैं आज ।
तखनुक कैातुक कहइत लाज ॥
आनँद नोर नयन भरि गेल ।
प्रेमक आँकुर पल्लव देल ॥
विद्यापति कवि कैातुक गाव ।
राजाशिवसिंह बुझ रस भाव ॥ ३ ॥

सखी से सखी वचन ।

जाइति देखिल पथ नागरि सजनी गे
आगरि सुबुधि सयानि ।
कनकलता सम सुन्दरि सजनी गे
विह निरमाओल आनि ॥
हस्ति गमनि जँगाँ चलइत सजनी गे
देखइत राजकुमारि ।
जिनका एहन सोहागिनि सजनी गे
पाय पदारथ चारि ॥
नील वसन तन घेरलि सजनी गे
सिरलेल चिकुर सम्हारि ।
ता पर भमर पिवय रस सजनी गे
वैसल पंख पसारि ॥
केहरि सम कटि गुन अछि सजनी गे
लोचन अम्बुज धारि ।
विद्यापति एह गाओल सजनी गे
गुन पाओलि अवधारि ॥ ३ ॥

उद्धव से गोपी वचन ।

चानन भेल विषम सर रे
भूषन भेल भारी ।
सपनहुं हरि नहि आएल रे
गोकुल गिरिधारी ॥
एकसरि ठाढ़ि कदमतर रे ।
पथ हेरथि मुरारी ।
हरि विनु देह दगध भेलरे
झामरु भेल सारी ॥
जाहु जाहु तों हेँ ऊधव हे
तोँ हे मधुपुर जाहे ।
चन्द्रवदनि नहिं जीउति रे
बध लागत काहे ।
भनहि विद्यापति तन मन दे
सुनु गुनमति नारि ॥
आजु आओत हरि गोकुल रे ।
पथ चलु झटझारि ॥ ४ ॥

गङ्गा जी की स्तुति ।

कतसुख सार पाओल तुअ तीरे ।
छाड़इत निकट नयन बह नीरे ॥
कर जोड़ि विनमोँ विमल तरंगे ।
पुन दरसन हो पुनमति गंगे ॥
एक अपराध छमब मोर जानी ।
पाँप परसल मातु तुअ पानी ॥



दीराप के नागा लोग।

कि करव जप तप जोग धेयाने।
जनम कृतारथ एकहिँ समाने॥
भनहिं विद्यापति समदों तोही।
अन्त काल जनु विसरहु मोही॥ ५॥

( राजा ) श्री कमलानन्दसिंह (सरोज)

---

## ब्रह्मपुत्र घाटी की जंगली जातियां

भारतवर्ष एक ऐसा विचित्र देश है कि इसकी समता भूमण्डल का कोई देश नहीं कर सकता। यदि इसे हम प्रकृति की प्रदर्शनी कहें तो कदाचित् अत्युक्ति न होगी। किसी काल में यह देश सभ्यता में सबका मुकुटमणि माना जाता था, और अब भी भारतवर्षीय दृष्टि में अनेक बातों में यह सभ्यता में और देशों से बढ़ा हुआ है। यहां की विद्या बुद्धि की तुलना करने में अन्य देशीय बड़े बड़े विद्वान विफलमनोरथ हुए हैं। विचित्रता तो यह है कि इस देश में सभ्य आर्य जातियों के साथ ही साथ अनेक असभ्य जंगली जातियां भी बसती हैं, जिनकी रहन सहन, रीति व्यवहार, खान पान आदि सबही कौतुहलप्रद हैं और जिनका विशेष वृत्तान्त जानने के लिये चित्त उत्सुक हो उठता है। गोंड भील सन्थाल आदि जंगली जातियां तो प्रसिद्ध ही हैं। आज जिस जाति का वृत्तान्त हम पाठकों को सुनाया चाहते हैं वह इन सबों से विशेष विचित्र है। इसका वृत्तान्त अब तक हिन्दी में कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। कलकत्ते मेडिकल कालेज के अध्यापक डाकृर वाडल ने इस जाति का बहुत कुछ अनुसन्धान किया है। उन्हींके लेखों के आश्रय* पर हम अपने हिन्दी पाठकों के चित्तविनोदार्थ नीचे ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी में बसनेवाली जंगली जातियों का कुछ वर्णन करते हैं। यह जातियां चीन, भारतवर्ष, तिब्बत और बर्मा के बीच में जो पहाड़ी देश है, उसी में रहती हैं। कुछ ही वर्ष पहिले ये जातियां अत्यन्त जंगली दशा में थीं। नरहत्या की इनमें इतनी प्रथा थी कि जो मनुष्य सबसे अधिक नरहत्या करता था वह बड़ा प्रतापी समझा जाता था। योधा लोग (जो नरहत्या कर चुके हों) कोई विशेष चिन्ह अथवा आभूषण पहिरते हैं और वे युवा लोग, जिन्होंने किसी मनुष्य को न मारा हो, इसे नहीं पहिरने पाते। इन लोगों की अनगिनित जातियां हैं। प्रत्येक गांव में एक जाति रहती है और हर गांव का एक सरदार होता है। पर यह केवल नाममात्र को सरदार होता है। गांव के लोग इसकी आज्ञा नहीं मानते और अपना अपना झगड़ा अपनी अपनी इच्छा के अनुसार आपही निपटाते हैं। ये लोग अपना घर लकड़ियों का एक ऊंचा चबूतरा बना कर उसके ऊपर बनाते हैं और घर की छत ढालूआं होकर नीचे भूमि तक लगी रहती है। गांव के कुंआरे लड़कों और लड़कियों के सोने का अलग घर रहता है। कुंआरे लड़के प्रायः गांव के बाहरी भाग में, जिसे वे लोग 'मोरांग' कहते हैं और जो ग्राम की रक्षा के लिये एक प्रकार का घर सा बना रहता है, सोते हैं। इन लोगों में पुरुष एक साथ कई स्त्रियों से विवाह कर सकता है और स्त्रियां भी एक साथ कई पति कर सकती हैं। वास्तव में इन पतियों को अपना अपना घर छोड़ कर स्त्री के घर आकर रहना पड़ता है। इनमें से मुख्य मुख्य जातियों का वर्णन नीचे किया गया है। पर अब इनमें से बहुत सी जातियां अपनी असभ्य तथा जंगली चालों को बड़ी शीघ्रता से छोड़ रही हैं, यहां तक कि इनमें से एक जाति का एक युवा कलकत्ता युनिवर्सिटी की मेट्रिक्यूलेशन परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया है और आशा की जाती है कि कुछ ही काल में इन लोगों के असभ्य आचरणों के नाम का भी लेश न रह जायगा।

### कुकी

इन लोगों में पहिले नरहत्या की बड़ी प्रथा थी। इन लोगों का विश्वास था कि जो मनुष्य जितने आदमियों को मारेगा वे सब आदमी दूसरे जन्म में उसके दास होंगे। अतएव ये समझते थे कि जो मनुष्य सबसे अधिक आदमियों को मारेगा वह

* हम डाक्टर वाडल के अत्यन्त अनुगृहीत हैं कि उन्होंने अपने लेख से सहायता लेने और उनके लिये हुए चित्रों के छापने की हमें आज्ञा दी।—सम्पादक।

दूसरे जन्म में सबसे अधिक सुख का भागी होगा। इसी कारण से जब कोई सरदार मर जाता था तो उसके सब दास तथा बन्दी लोग मार डाले जाते थे और उनके सिर मृतक शरीर के साथ चबूतरे पर रक्खे जाते थे।

कुकी लोग कंघी को एक अपूर्व वस्तु समझते हैं। कंघी काठ की लाल और काली रंगी हुई होती है, तथा कभी कभी हाथीदांत की भी होती है। यदि कंघी खोजाय तो इसे बड़ा अशुभ मानते हैं। विवाह के समय पुरोहित दुलहे और दुलहिन को एक एक कंघी देता है। किसी मनुष्य की कंघी कोई दूसरा मनुष्य काम में नहीं ला सकता, परन्तु पति की कंघी पत्नी और पत्नी की पति काम में ला सकते है। जब कोई मनुष्य मर जाता है तो उसकी कंघी उसके साथ गाड़ी जाती है। मृतक का शोक प्रकाश करने के लिये उसके सम्बन्धी लोग अपनी अपनी कंघियां तोड़ डालते हैं।

युवा होने के पहिले सब मनुष्यों के गोदना गोदा जाता है। यह गोदना प्रायः बाएं हाथ में वृत्ताकार होता है। परन्तु कभी कभी दहिने हाथ में भी होता है और कभी कभी बाएं और दहिने दोनों हाथों में। कभी ऐसा भी होता है कि एकही हाथ में गोदने के एक से अधिक वृत्त होते हैं।

इन लोगों में स्त्री को प्रधान मानते हैं (maternal state of society). अविवाहित मनुष्य का कोई आदर नहीं होता। विवाह होने के पहिले वर को कन्या के घर तीन वर्ष तक रह कर दास की भांति काम करना पड़ता है, तब कहीं उसका विवाह होता है। परन्तु तब भी वह स्वतन्त्रता नहीं पाता। विवाह होने के पीछे भी उसे पांच सात महीने तक उसी भांति दासत्व दशा में रहना पड़ता है। पांच वर्ष पूरा होने पर वह अपना घर अलग बना कर उसमें स्वतन्त्रतापूर्वक रहने पाता है। जाते समय उसे अपने श्वसुर को दो रुपए देने पड़ते हैं। जो लोग इस भांति दास की नाईं काम करना नहीं चाहते, उन्हें इससे छुटकारा पाने के लिये दो सौ वा इससे अधिक रुपए देने पड़ते हैं।

बालकों का नाम वही रक्खा जाता है जो ग्राम के वृद्धों का नाम हो। कदाचित इस कारण से कि वे समझते हैं कि ऐसा करने से बालकों की आयु दीर्घ होगी। पुत्र होने पर पिता फिर अपने नाम से नहीं पुकारा जाता। फिर वह 'अमुक का पिता' कहकर पुकारा जाता है। जो लोग निस्सन्तान हों वे 'पुत्रहीन पिता' वा 'पुत्रहीन माता' कह कर पुकारे जाते हैं।

किसी मनुष्य की मृत्यु के पीछे उसका उत्तराधिकारी उसका भाई होता है और यदि उसके भाई न हो तो उसकी पत्नी उत्तराधिकारिणी होती है। बड़े भाई के देहान्त पर यदि छोटे भाई का विवाह न हुआ हो तो उसे अपने बड़े भाई की विधवा से अवश्यमेव विवाह करना पड़ता है। ऐसा न करने से बड़े भाई की सारी सम्पत्ति उसे न मिलकर उस विधवा स्त्री को मिल जाती है। परन्तु बड़ा भाई छोटे भाई की विधवा से विवाह नहीं कर सकता।

### अङ्गमी

ये सबसे अधिक हत्यारे तथा संख्या में सब से अधिक थे। इनके पड़ोसी लोग इनसे इतना डरते थे कि अकेला एक अङ्गमी किसी दूसरे गांव में जाकर जो चाहे सो कर लेता था, और वे गांववाले उससे इस डर के मारे कुछ नहीं बोलते थे कि यदि उससे बोलेंगे तो उसके जाति के सब लोग आकर उनसे इसका बदला लेंगे।

एक एक गांव में इनका २ से लेकर ६ दल तक रहता है। यह दल एक दूसरे से आपस में ज़रा ज़रा सी बातों मे इतना लड़ जाता है कि यह लड़ाई पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है, और जभी एक दल अवसर पाता है तभी दूसरे से अपनी खार निकालता है। परन्तु जब किसी गांव के दो दल आपस में इस भांति लड़ते हों तो, उसी गांव का तीसरा

दल उस स्थान पर खड़ा रहकर भी कुछ नहीं बोलता और न कभी उन दोनों दलों में मेल कराने का यत्न करता है। इस लड़ाई में बहुधा वृद्धा स्त्रियां तथा बच्चे ही अधिक मारे जाते हैं। ये लोग नरहत्या से तनिक भी नहीं हिचकते और असहाय स्त्रियों तथा बच्चों को भी मार डालने में अपना बड़ा गौरव समझते हैं। युवक लोग जब तक इस प्रकार हत्या नहीं कर सकते तब तक गांव की अविवाहिता स्त्रियां उनका बड़ा अनादर करती हैं।

किसी दुर्घटना में, तथा मृत्यु और विशेष कर अचानक मृत्यु, तथा आग लगने में, और बालक जन्मने में भी, वह घर जिसमें कि यह घटना हुई हो, कुछ दिनों (बहुधा तीन दिन) के लिये छोड़ दिया जाता है। जब कोई सरदार मर जाता है तो कोई आदमी गांव के बाहर तीन दिन तक नहीं जाता।

किसी योधा के मरने पर उसका सबसे निकट का सम्बन्धी अपने हाथ में भाला लेकर शव के माथे में मारता है, जिसमें परलोक में यह समझा जाय कि वह युद्ध में मरा है और इस कारण से उसका वहां सत्कार किया जाय। मृतक के साथ उसके दहिने ओर उसके दोनों भाले गाड़ा जाता हैं और उसकी तलवार तथा अग्नि उत्पन्न करने के लिये चीरा हुआ बांस और डोरी भी गाड़ी जाती है। स्त्री के साथ केवल एक काला कपड़ा गाड़ा जाता है और उसके कफन पर एक डलिया चावल फेंक कर तब मट्टी पाटी जाती है। मरने की जेवनार के लिये जो पशु मारे जाते हैं उनकी खोपड़ी तथा मृतक की ढाल, बरछा और बेंत के गहने कबर के ऊपर रक्खे जाते हैं। स्त्री की कबर के ऊपर उसका टोकरा, चावल कूटने का बत्ता, तथा बुनने की लकड़ियां रक्खी जाती हैं। मृत्यु के चौथे दिन एक मुर्गा मारा जाता है और उसे मृतक के सब सम्बन्धी खाते हैं।

आओ

ये लोग अङ्गमी से काले तथा कम बलवान पर अधिक लम्बे होते हैं। इनमें पुरुष लोग गोदना नहीं गोदवाते, परन्तु स्त्रियां मुंह, गरदन, छाती, भुजा और पैरों में गोदवाती हैं। यह गोदना इज्जत का चिन्ह समझा जाता है, क्योंकि लौंडियों को गोदना नहीं गोदा जाता। मनुष्यों के कान में तीन छेद किए जाते हैं। सबसे नीचे का छेद सबसे बड़ा होता है और इसमें बांस अथवा पीतल की एक बड़ी पोंपली पहिनी जाती है। ऊपर के दोनों छेदों में रुई के गुच्छे पहिने जाते हैं। मोहनमाला के स्थान पर ये लोग श्वेत दाने की माला पहिनते हैं। योधालोग, जो नरहत्या कर चुके हों, गले में बनैले सुअर के दांत का गलाबन्द तथा कलाई पर श्वेत कौड़ियों का एक आभूषण पहिरते हैं; परन्तु अब यह आभूषण वे लोग भी पहिरने लग गए हैं जिन्होंने नरहत्या नहीं की है।

इनके ग्राम बहुधा बड़े होते हैं, तथा पर्वतों पर अच्छे स्थान पर होते हैं, और उनके चारों ओर गड्ढा होता है जिसमें कांटे जड़े हुए बांस रहते हैं। ग्राम के द्वार के निकट 'मोराङ्ग' होता है जिसमें रात्रि के समय ग्राम के सब अविवाहित लड़के सोते हैं, तथा इसमें पञ्चायत भी होती है। इसके भीतर मनुष्य, हाथी, चीते, छिपकली, आदि की खुदी हुई मूर्तियां रहती हैं, जो काली, श्वेत तथा गेहूं के रङ्ग की रङ्गी रहती हैं। दीवालों के चारो ओर पुराने तूम्बों की बनी हुई आदमियों और जन्तुओं की खोपड़ियां होती हैं, जो तनिक दूर से देखने से सच्ची खोपड़ी जान पड़ती हैं। 'मोराङ्ग' का छज्जा कुछ आगे निकला रहता है और उसमें फूंस की बनी हुई मनुष्यों की छोटी छोटी मूर्तियां तथा फूंस के गुच्छे एक दूसरे से समान दूरी पर होते हैं। 'मोराङ्ग' के बाहर लकड़ी का एक चबूतरा रहता है, जिसपर युवा लोग अपने मित्रों के साथ बैठ कर दिन भर गप्पें मारते हैं, तथा तमाखू पीते हैं।

इसीके निकट एक खुला हुआ दालान रहता है। इसमें युद्ध का डङ्का रक्खा रहता है। यह एक बड़े वृक्ष के तने को खोखला करके, तथा उसे भैंसे के आकार का गढ़ के बनाया जाता है।

गांव का एक सरदार होता है, परन्तु जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, वह केवल नाममात्र ही को होता है।

विवाह दोनों प्राणियों की सम्मति से होता है। चिनंगों जाति में इसके अतिरिक्त विवाह की कोई रीति नहीं होती कि कन्या के पिता को मूल्य की भांति कोई नाममात्र का उपहार दिया जाय। मैाग सेन जाति में विवाह होने के २० दिन पहिले वर और कन्या अकेले यात्रा को चले जाते हैं।

इन लोगों के बहुत से तेवहारों में बैल बड़ी निर्दयता से मारा जाता है, अर्थात् जीतेही उसकी बोटी बोटी काट डाली जाती है। उनका एक तेवहार नीचे वर्णन किया जाता है। इससे जान पड़ता है कि इन लोगों में पहिले कन्या को कहीं से हर लाकर विवाह करने की प्रथा थी। यह तेवहार अगस्त मास में तीन दिन तक होता है। इसमें लताओं का एक रस्सा बनाया जाता है, जिसके एक सिरे को गांव के युवा लोग अपनी ओर खींचते हैं और दूसरे को युवतियां अपनी ओर। युवतियां रस्से को गांव के बाहर ले जाने का यत्न करती हैं और युवा लोग यह यत्न करते हैं कि ऐसा न होने पावे. अंधेरा होने पर भिन्न भिन्न दल की लड़कियां अपनी अपनी भूमि पर रासमण्डल बना कर नाचती और गाती हैं। युवा लोग हाथ में बत्ती लेकर दूसरे दल की लड़कियों के पास जाकर तथा उनमें से एक को चुन कर उसे बलात् उठा ले जाते हैं। जो लड़कियां इस भांति ले जाई जाती हैं उन्हें उस युवक को जो उसे ले आया हो, खड़े होकर शराब पिलाना पड़ता है।

इनमें गुलामी अब तक प्रचलित है। मुरदे गाड़े नहीं जाते। वे एक सन्दूक में रक्खे जाते हैं और उस सन्दूक में धूआं दिया जाता है। तब यह सन्दुक गांव के बाहर एक ऊंचे चबूतरे पर रख दिया जाता है और उसपर मृतक के कपड़े, थाली और कटोरा रक्खे जाते हैं, और योधा के शव के सामने, जो जो सिर उसने अपने जीवन में काटे हों, वे सब एक पंक्ति में रक्खे जाते हैं।

### अरलेङ्ग

ये लोग सदैव घूमा करते हैं। कभी एक ग्राम में सदा के लिये अपना निवास नहीं रखते। घने जङ्गल के बीच थोड़ी सी भूमि साफ़ करके वहीं एक ग्राम बना लेते हैं, और वहीं रुई और चावल की खेती करने लग जाते हैं। परन्तु दो तीन वर्ष पीछे वे उस स्थान को छोड़ देते हैं और इसी भांति किसी दूसरे स्थान में जाकर अपना ग्राम बना लेते हैं।

गांव भर के सब लोग चीते आदि घातक जन्तुओं के डर से, एकही घर में रहते हैं। उनके मुरगे, कुछ बकरे तथा अन्न इस घर में एक ओर रहते हैं। घर के चबूतरे के नीचे भूतों के बलिदान के लिये सूअर, बकरे और मुरगे रहते हैं। भैंसे और गाय घर के निकट एक बाड़े में रहते हैं।

स्त्रियां भी बराबर वह सब काम करती हैं जो पुरुष करते हैं। विवाह केवल बालिगों में होता है। इन लोगों में भी विवाह होने के पहिले वर को कन्या के पिता के यहां दो वर्ष तक दास की भांति सेवा करनी पड़ती है। एक मुर्गा गुप्त रीति से बलिदान दिया जाता है और वर और कन्या उसका मांस खाते हैं।

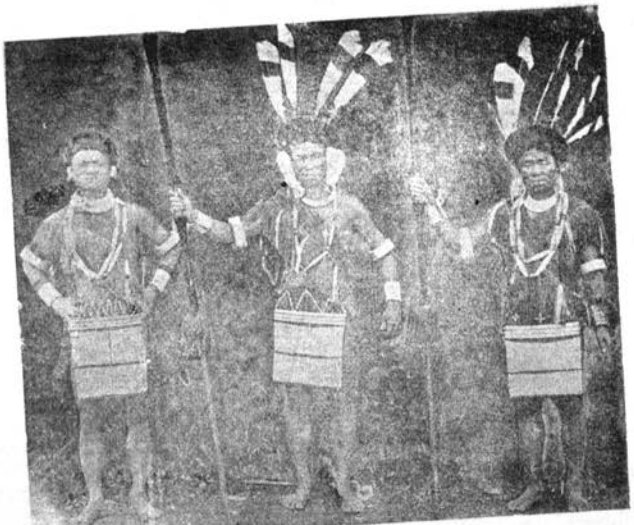
बालकों के नाम, ग्राम की सबसे वृद्धा स्त्री रखती है। प्रत्येक गांव में वर्ष में एक बार एक बड़ा भारी उत्सव होता है जिसमें उनके मुख्य देवता 'अरनाम' अर्थात् 'पृथ्वीराज' को श्वेत रङ्ग का कोई जानवर, यथा कोई श्वेत चिड़िया, अथवा श्वेत बकरा वा श्वेत गाय, बलि चढ़ाई जाती है; परन्तु सूअर में श्वेत रङ्ग का विचार नहीं किया



नागाओं की हजामत।



दीराप उपत्यकावासी खाम्-वा नागा



लेहटा ( नागा) लोग।



दीराप के नागा लोग।

जाता। भूमि के साफ करके उसपर केले और इलायची के पत्ते बिछाते हैं। फिर उसपर फूल तथा पीसा हुआ चावल रखते हैं, तब ग्राम का वैद्य अरनाम के सूअर तथा और जन्तु चढ़ाता है। देवता के जानवरों का लोहू और कुछ पका हुआ भोजन चढ़ा कर तब सब लोग मांसादि भक्षण करते हैं।

वे लोग समझते हैं कि पहाड़ों, नदियों और झीलों के भूत मनुष्य, पशु और अन्न का नाश करते हैं। वे जलवृष्टि रोक देते हैं, तथा चीतों को मनुष्यों और पशुओं के मारने के लिये भड़काते हैं। एक दूसरा भूत भी, जो घरों में रहता है, ऐसा ही दुष्ट होता है। परन्तु वे कहते हैं कि ये भूत यह सब उपद्रव केवल रात्रि में कर सकते हैं, दिन में उनका कोई बस नहीं चलता।

जब कोई मनुष्य बीमार पड़ता है तो वैद्य उसे अपने हाथ में पकड़ कर मुट्ठी भर कौड़ी लेता है और उन्हें भूमि पर फेंकता है। फिर कौड़ियों के भूमि पर गिरने की रीति से वह यह ज्ञात करता है कि 'हेमोटो' का वासस्थान कहां है। उस स्थान के निकट एक चिड़िया बलिदान दी जाती है और तब वैद्य मन्त्र द्वारा 'हेमोटो' को रोगी के शरीर से निकाल कर उस मृत चिड़िया में भगा देता है। कभी कभी 'हेमोटो' जाना अस्वीकार करता है, अर्थात् तब रोगी मर जाता है।

मृतक जलाए जाते हैं। गांववाले चिता के चारों ओर इकट्ठे होते हैं और वैद्य उस चिता में आग लगता है, और तब पशु और पक्षी मारे जाते हैं। इसके पश्चात् भोजन और सुरापान प्रारम्भ होता है और चिता के चारों ओर जङ्गली नृत्य और गान होने लगता है। यह बराबर रात भर होता है। जब सवेरा होता है तो सब लोग वहां से चले आते हैं, केवल ग्रामवैद्य और मृतक के सम्बन्धी वहां रह जाते हैं। ये लोग सवेरा होने पर एक गड़हा खोद कर पानी निकालते हैं। जब उसमें कुछ पानी आ जाता है तो वैद्य उसमें से कुछ पानी लेकर उस भूमि पर छिड़कता है और उस भूमि का नाम मृतक के नाम से रखता है। यदि कुछ काल तक गड़हा खोदने पर भी उसमें पानी न निकले तो यह समझा जाता है कि मृतक की आत्मा स्वर्ग से निकाल दी जायगी और नरक में डाली जायगी। इसी कारण से जिसमें पानी सुगमता से अवश्य प्राप्त हो सके, दाहक्रिया किसी नदी के तट के समीप, अथवा कोई ऐसे स्थान पर जहां थोड़ेही खोदने पर पानी मिले, की जाती है।

## मेराडे अथवा गरो

कुकी लोगों के विषय में यह लिखा जा चुका है कि वे स्त्री के कितने दास होते हैं। परन्तु मेराडे लोग उनसे भी कई चासनी बढ़ कर होते हैं। इन लोगों में विवाह का प्रस्ताव कन्या करती है और बर अपना घर छोड़ कर कन्या के घर जाकर रहता है। यदि पति अपनी स्त्री को तिलाञ्जलि दिया चहे तो वह कदापि ऐसा नहीं कर सकता जब तक कि वह अपनी कुल सम्पत्ति और अपने लड़कों को अपनी स्त्री को न देदे। परन्तु यदि स्त्री चाहे तो अपने पति को अलग करके दूसरे मनुष्य से विवाह कर सकती है और इसके साथ ही अपने पहिले पति की सम्पत्ति और लड़के भी ले जा सकती है। जब कोई सरदार मर जाता है तो उसका उत्तराधिकारी उसके बहिन के लड़कों में से जिसे उसकी विधवा चुन ले, होता है। यदि इस युवा का विवाह होगया हो तो उसे अपनी स्त्री को छोड़ देना पड़ता, तथा उसे अपनी सब सम्पत्ति और लड़के दे देने पड़ते हैं और इस वृद्धा विधवा से विवाह करना पड़ता है। किसी सरदार की स्त्री भी अपने पति को तिलाञ्जलि दे सकती है, परन्तु उसे अपना दूसरा पति उसी उत्तम घराने में से चुनना पड़ता है, क्योंकि दूसरे घराने के लोग सरदार होने के योग्य नहीं समझे जाते।

ये लोग कुत्ते के मांस को एक बड़ी अच्छी स्वादिष्ट वस्तु समझते हैं। ये एक आकाश के देवता की पूजा करते हैं और समझते हैं कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे तथा नदियों, बनों और पर्वतों के देवता उसके गुमाश्ते हैं। स्वर्गीय देवताओं को सफेद मुर्गे चढ़ाए जाते हैं और नदियों, बनों और पर्वतों के देवता को चावल, पुष्प, मदिरा आदि चढ़ाते हैं। इन लोगों के देवताओं के मन्दिर नहीं होते। एक सूखे बांस को, जिसमें शाखाएं भी लगी रहती हैं, पृथ्वी में गाड़ देते हैं और उसी की पूजा करते हैं।

## क्योन-स्सू वा लोहटा

यह जाति पहिले बड़ी भयानक थी, परन्तु अब यह अपना जंगलीपन छोड़ती जाती है और बस कर खेती करने लग गई है। इनके गांव का सरदार भी नाममात्र ही को होता है। इन लोगों के घर लकड़ी के चबूतरों पर न बनाए जाकर भूमिही पर बनाए जाते हैं, परन्तु गांव के युवालोग गांव के अन्त में मोरांग में रहते हैं।

प्रत्येक गांव में एक पवित्र वृक्ष होता है। लोहटा लोग जब कभी मनुष्यों को मारते हैं तो उनकी खोपड़ी लाकर इस वृक्ष में कील से जड़ देते हैं।

लोग कहते हैं कि इनमें लड़कियों का विवाह बहुत छोटी अवस्था में हो जाता है और ये लगभग सौ रुपए पर खरीदी जाती हैं।

मृतक गाड़े जाते हैं और जो जानवर मृतक की जेवनार के लिये मारे जाते हैं, उनकी खोपड़ियां कबर के ऊपर रक्खी जाती हैं।

यदि कोई मनुष्य बाघ से मारा जाय, अथवा डूब कर, वा किसी वृक्ष के ऊपर से गिर कर, वा किसी गिरते हुए वृक्ष के नीचे दबकर मर जाय, तो यह समझा जाता है कि देवता का कोप हुआ, और उसके घर के सब लोग अपना घर द्वार चीज वस्तु, और यहां तक कि तन पर के कपड़े भी छोड़ कर नङ्गे हो घर से निकल जाते हैं। ग्राम के बाहर जाने पर इनके सम्बन्धी में से कोई वृद्ध मनुष्य इन्हें पहिरने के लिये कपड़ा देता है। उसे पहिन कर ये बिचारे एक महीने तक बन में घूमते हैं। एक मास इस प्रकार व्यतीत होने पर यह समझा जाता है कि देवता का कोप शान्त हो गया। तब ये लोग ग्राम में लौट आने पाते हैं। परन्तु त्यागे हुए घर और वस्तुओं को वे अथवा कोई अन्य मनुष्य फिर कभी नहीं छू सकता और न फिर कोई उस घर को खोद कर उस स्थान पर दूसरा घर बना सकता है।

## मिश्मी

इन लोगों में अनेकभार्यता की बड़ी प्रथा है। जिसकी सबसे अधिक स्त्रियाँ होती हैं वह सबसे अधिक धनाढ्य समझा जाता है। स्त्रियां खरीदी जाती हैं। उनका मूल्य एक सूअर से लेकर बीस पशु तक होता है। अधिक स्त्रियां और लड़के होने के कारण इन लोगों के घर बहुत बड़े बड़े होते हैं, यद्यपि प्रत्येक गांव में उनकी संख्या बहुत कम होती है। सरदार का घर लम्बान में १३० फीट से कम नहीं होता होगा और उसमें उसकी स्त्रियों और लड़कों को लेकर १०० मनुष्य रहते होंगे। जब कोई सरदार मर जाता है तो उस के उत्तराधिकारी की माता को छोड़ कर और उसकी सब स्त्रियां उसके उत्तराधिकारी की हो जाती हैं। उत्तराधिकारी की माता दूसरे सबसे निकट के सम्बन्धी की जमा हो जाती है।

उनका धर्म विषयक यह विश्वास है कि एक देव है जो उनको दुःख और क्लेश देता है। अतएव जिसमें वह ऐसा न करे इस हेतु उसके लिये बलिदान देना चाहिए।

## सिनटेङ्ग

कुकी और मेराड़े जाति की नाईं इन लोगों में भी स्त्री को प्रधान मानते हैं। इन लोगों में भी विवाह

का प्रस्ताव कन्या करती है और बर अपना घर बार छोड़ कर कन्या के घर जाकर रहता है। लड़के अपने पिता के वंश के नहीं समझे जाते, वरन अपनी माता के कुल के समझे जाते हैं। अतएव यदि पति और पत्नी लड़कर जुदा हो जाते हैं तो लड़के बाले माता के साथ रहते हैं।

सरदार के मरने पर उसका उत्तराधिकारी उसकी बहिन का लड़का होता है।

सूमा

ये लोग बड़े झूठे तथा विश्वासघातक होते हैं। किसी मेहमान को सत्कार पूर्वक अपने घर टिकाना तथा अवसर पाकर उसी मेहमान को यमलोक पहुंचा देना, इन लोगों में कुछ बुरा ही नहीं, वरन् बड़े गौरव का काम समझा जाता है। तथापि इनके नर-हत्या-प्रिय पड़ोसी लोग इनको बड़ा वीर समझ कर इनका बड़ा सम्मान करते हैं।

इन लोगों का प्रत्येक ग्राम स्वतन्त्र होता है, पर और सब नागा जातियों से इनमें विशेषता यह है कि ग्राम के सरदार का उत्तराधिकारी उसका पुत्र होता है। इन लोगों में यह रीति है कि सरदारों के पुत्र अपने अपने नए गाँव बसाते हैं। इसी कारण से सूमा लोगों के ग्राम बहुत छोटे छोटे तथा संख्या में बहुत अधिक होते हैं।

विवाह के लिये स्त्रियां खरीदी जाती हैं। उनका मूल्य लग भग अस्सी वा सौ रुपए के होता है। कुंआरी लड़कियां वा लड़के अपने माता पिता से अलग दूसरे घर में सोते हैं। मुरदे बांस की चटाइयों में लपेट कर गाड़े जाते हैं और योधा के हथियार उसकी कबर पर रक्खे जाते हैं। मृतक की जेवनार के लिये जो पशु मारे जाते हैं उनकी खोपड़ी उसकी कबर पर लकड़ियां गाड़ कर उन पर लटकाई जाती हैं।

जेमो।

इन लोगों का भी प्रत्येक गाँव स्वतंत्र होता है और गाँव के सरदार का उत्तराधिकारी उसका पुत्र होता है, परन्तु इनकी और सब चालों से विदित होता है कि पहिले इन लोगों में भी स्त्री को प्रधान मानते थे। विवाह होने के पहिले बर को कन्या के घर कई रात्रि व्यतीत करनी पड़ती हैं और विवाह में बर कन्या के पिता को बहुत सा द्रव्य देता है। लड़कों का नाम उनके माता पिता नहीं रखते, वरन् गाँव की वृद्ध स्त्री तथा पुरुष रखते हैं। लड़का होने पर पिता अपने नाम से नहीं पुकारा जाता, वरन् 'अमुक का पिता' कह कर पुकारा जाता है। और जब किसी मनुष्य अथवा स्त्री को लड़का नहीं होता तो उसे सब लोग 'बिना पुत्र का बाप' अथवा 'बिना पुत्र की माता' कह कर पुकारते हैं। कुंआरी लड़कियां अपने केश कटवाती हैं, तथा कौड़ी, पीतल, सीसे, और कभी कभी चांदी के भी गहने पहिरती हैं। पर विवाह होने पर फिर अपना केश कभी नहीं कटवातीं और गहने उतार देती हैं, तथा इन्हें अपनी अविवाहिता सम्बन्धियों को दे देती हैं।

किसी मनुष्य की मृत्यु पर उसकी सब सम्पत्ति उसके पुत्र को मिलती है। लड़की को केवल उसकी माता के गहने मिलते हैं। यदि किसी मनुष्य के लड़का न हो तो उसकी सम्पत्ति उसकी लड़की को न मिलकर उसके सबसे निकट के पुरुष सम्बन्धी को मिलती है।

ये लोग हार्नबिल नामी चिड़िया को बड़ा पवित्र समझते हैं और उसके परों को लड़ाई के समय शृङ्गार के काम में लाते हैं। परन्तु फिर भी उसका मांस स्वादिष्ट होने के कारण उसे गोली मारने से तनिक भी नहीं हिचकते। परन्तु यदि इस पक्षी के घोसले का मुख पश्चिम की ओर हो तो उसके घोसले में से बच्चों को नहीं पकड़ते।

ये लोग भी अपने मुरदों को गाड़ते हैं। किसी पेड़ के तने को खोखला करके उसे कफन के काम में लाते हैं। मृतक के जितने पशु हों, वे सब मार डाले जाते हैं, जिसमें वे भी मृतक के साथ परलोक

में जाय। उनका मांस मृतक की जेवनार में खाया जाता है और खोपड़ियां उसकी कबर के ऊपर लट्ठे गाड़ कर उन पर लटकाई जाती हैं।

गोपालदास।

# राजर्षि भीष्मपितामह जी

[ ४ ]

भीष्मपितामह जी का शरीर बलिष्ठ था। उनका बल और ब्रह्मचर्य्य सारे संसार प्रसिद्ध था और यह उनके वीर्य्यरक्षा और आत्मिक बल का ही प्रभाव था कि इतने घावों के होने पर भी वे अब तक जीते रहे और धैर्य्य से कष्ट को सहन किया और उपदेश भी शान्ति से देते रहे। यदि उनका शारीरिक बल ऐसा न होता तो उनसे ऐसा महान कार्य्य कैसे हो सकता था! एक निर्बल पुरुष न तो अपनी रक्षा कर सकता है और न परोपकार के काम के योग्य होता है। निर्बल पुरुष की आत्मा भी यदि बलवती हुई तो वह भी पूर्णतया अपने उद्देश्य में साफल्य प्राप्त नहीं कर सकता। निर्बल पुरुष कष्ट को सह नहीं सकता, इसीलिये वे पुरुष, जिनके जीवन परोपकारक हैं अवश्य इस बात पर ध्यान दें और अपनी शारीरिक अवस्था ठीक रखें।

भीष्म जी का शरीर अधिक रुधिर के निकलने और पीड़ा के बढ़ने से बहुत ही निर्बल होगया। यद्यपि उन्होंने योग के द्वारा बहुत दिनों तक अपने जीवन को रखा, परन्तु ईश्वरीय नियम भी कोई वस्तु है। पांचभूतों का शरीर अन्त में विकार को प्राप्त होता ही है। उनकी मृत्यु के सारे लक्षण प्रगट होगए। लोगों को ज्ञात होगया कि अब यह महान अग्नि थोड़ी देर में शान्त हो जायगी। अन्त को मृत्यु का समय निकट आ गया, और राजर्षि भी अपने उपदेशरूपी अमृत से लोगों को लाभ पहुंचा चुके थे, अब उन्होंने मृत्यु के लिये अपने आपको उद्यत किया। मृत्यु की तय्यारी एक बड़ी कठिन तय्यारी है; परन्तु वह तय्यारी भीष्म जैसे पुरुष के लिये कठिन न थी, क्योंकि वे सदा मृत्यु को निकट जान धर्म सञ्चय करने में मग्न रहते थे और एक क्षण भी अपने धर्म को नहीं भूलते थे। मृत्यु भयानक है, मृत्यु कठिन है, मृत्यु का मुख विकराल है-पर किन के लिये? जिन्होंने इस जीवन के रहस्य को नहीं समझा, जो अपने कर्तव्य को भूल सांसारिक विषयों में लिप्त होगए हैं। महान पुरुष संसार में प्रत्येक कार्य्य को करके, परमात्मा की आज्ञा पाल निश्चिन्त हो शान्ति से मरा करते हैं। भीष्म जी ने जब देखा कि अब मेरा समय बहुत निकट है तो, युधिष्ठिर आदि जितने वहां उपस्थित थे, सबको कहा कि मेरी मृत्यु का समय निकट है, तुम बाकी बान्धवों को यहां बुला लाओ। युधिष्ठिर जी तत्काल धृतराष्ट्र, कुन्ती, गान्धारी और बाकी वंश की स्त्रियों को वहां बुला लाये और कहा "महाराज, हम सब उपस्थित हैं, अब जो आप आज्ञा करें उसका पालन किया जावे"। भीष्म जी समाधि में मग्न थे। युधिष्ठिर के पुनः बुलाने पर आंखें खोल दीं और चारों ओर देख युधिष्ठिर का हाथ पकड़ उन्होंने कहा "मैं बड़ा प्रसन्न हूं, तुम सबको ले आए, मैं ५८ दिवस से यहां पड़ा हूं और माघ का मास आ गया है, और यह समय मेरा तुम सबसे अन्तिम मिलने का है"। फिर धृतराष्ट्र की ओर देख बोले "हे कुरुनन्दन! आप मनुष्य के प्रत्येक धर्म को जानते हो, वेदों के पवित्र ज्ञान को भी आपने विदुर से सुना है, आप जानते हो कि मृत्यु सबके लिये है। तुम अब किसी बात का शोक मत करो, जो होना था वह हो गया। युधिष्ठिर सदा धर्म के पथ पर चलने वाला है, उसको अपने पुत्रतुल्य समझो, वह तुम्हारी पिता की भांति सेवा करेगा, वह वृद्धों और विद्वानों की सेवा किया करता है और उनपर अपना जीवन न्योछावर करने को उद्यत रहता है। तुम्हारे बेटे बड़े क्रोधी और लोभी थे, इसलिये उन्होंने अपने कर्मों का फल पाया। उनका शोक करना तुम्हें योग्य नहीं"। फिर कृष्ण की ओर देख बोले "आप सदा

पाण्डवों की रक्षा कीजिएगा। पहिले भी आप उनकी सहायता करते रहे हैं। मैं दुर्योधन को कहा करता था कि सत्य की जय होगी। महात्मा कृष्ण सत्य की ओर हैं। मैंने सदा उसको समझाया कि सन्धि कर ले, पर दुष्ट ने मेरा कहा न माना और उसका फल पाया।" फिर सब की ओर देख कर कहा "अब आप सब लोगों को शोक छोड़ मुझे परब्रह्म की गोद में जाने की आज्ञा देनी चाहिए। तुम लोगों को उचित है सदा धर्म का ही आश्रय पकड़ो, सत्य के पथ पर ही चलो, क्योंकि सत्य एक बड़ी शक्ति है।" इस प्रकार शिक्षा दे, उनके शरीर के प्रत्येक अङ्ग से जीवात्मा ने सम्बन्ध छोड़ना आरम्भ किया। वह दृश्य देखने के योग्य था। सब लोग जो उपस्थित थे, आश्चर्यान्वित होगए। अन्त को उनकी आत्मा शिर की ओर से निकल गई और शिर फट गया। इस प्रकार वह महान अग्नि सदा के लिये शान्त हो गई। उनकी ऐसी आश्चर्यजनक मृत्यु को देख सबके मुख से निकला-

"मृत्यु इसी का नाम है"

जब भीष्म जी का देहान्त हो गया तो लोगों ने चन्दन की लकड़ियां, घृत, आदि सामान मंगवा उस के अन्तिम संस्कार करने की तय्यारी की। चन्दन की लकड़ियों से पहिले चिता बनाई गई। फिर सुगन्धित द्रव्य इरद गिरद लगा कर उनका शरीर बीच में रख दिया गया और लकड़ियां लगा वेदमन्त्रों से आहुतियां डाली गईं और उस महान यज्ञ नरमेध का पूर्ण हुआ। फिर आवश्यकीय कार्य्य से निवट लोग गृहों को चले गए।

भारत का सूर्य्य, मनुष्यमात्र का आदर्श, धर्म की साक्षात मूर्ति, क्षत्रियों का शिरोमणि, सदा के लिये ईश्वर की गोद में खेलने के लिये चला गया। सब को मरना है, परन्तु प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि अपने जीवन की प्रत्येक अवस्था के कर्तव्य का पूर्णतया पालन करता हुआ भीष्म जी की भांति पवित्र मौत मरे।

आर्य्यावर्त ने इसके बाद बहुत से योग्य पुत्र उत्पन्न किए, परन्तु राजर्षि ऐसा कोई न हुआ।

## भीष्म के गुणों पर एक दृष्टि और हमारा कर्तव्य

पाठकगण! भीष्मपितामह जी की संक्षिप्त जीवनी मैंने आपके सामने धर दी है। आओ, अब आपको उस ब्रह्मचारी के एक एक गुण को पृथक करके सुनाऊं और फिर बतलाऊं कि वे मनुष्य-मात्र के आदर्श के योग्य हैं वा नहीं? क्या मनुष्य जाति ऐसे पुरुष के उत्पन्न होने से गौरव को प्राप्त नहीं होती? क्या ऐसे पुरुष सचमुच उन्नति के द्वार खोलनेवाले नहीं होते? महान पुरुष वह है जो संसार के सब सुखों को लात मार कर चक्रवर्ती राजा से भी भय न करता हुआ अपने सिद्धांत को मुख्य रक्खे और यह गुण मैं भीष्म में पाता हूं और इसी लिये आपसे सविनय निवेदन करता हूं कि उस राजर्षि के सब गुणों को ध्यानपूर्वक पढ़िए।

विद्वत्ता—भीष्म जी की विद्वत्ता और उनका परा और अपरा विद्या को जानना महाभारत के शांति और अनुशासन पर्व के पढ़ने से भली भांति विदित होता है, और यह उनकी विद्या का ही कारण था जिसने उनके जीवन को ऐसा बनाया। यह वेदों की ही पवित्र शिक्षा थी जिसके कारण वे अपने जीवन में सारी आयु ब्रह्मचर्य्य रखने पर भी निष्कलंक रहे। यह उनकी विद्या का ही प्रभाव था कि श्रीकृष्ण जैसे विद्वान भी उनकी मन से प्रतिष्ठा करते थे। बहुत से मनुष्य इससे शायद यह समझ लें कि भीष्म आज कल के पण्डितों की भांति विद्वान होंगे। परंतु यह समझना उनकी भूल होगी। भारत के आधुनिक विद्वान अक्षरों की विद्या जानते हैं, तत्व नहीं जानते। कारण यह है कि उन्होंने ऋषियों की सैली को उड़ा दिया है। संस्कृत का पण्डित इस समय कौन समझा जाता है जो शास्त्रार्थों में दो दो घंटे न्याय की अवच्छेदिका पर, या सिद्धान्त की फक्किका पर, या वेदान्त के घटाकाश मठाकाश पर बोल सके।

परन्तु वैशेषिक दर्शन के कर्ता कणाद जी ने विद्या का लक्षण यह किया है—

अदुष्टं विद्या ॥ वै० अ० ९ आ० २ सू० १२

जो अदुष्ट अर्थात् यथार्थ ज्ञान है उसको विद्या कहते हैं। भीष्म जी को सब धर्मों का यथार्थ ज्ञान था, इसलिये वे विद्वान थे।

पारोपकारिता—भीष्म जी की आत्मा बड़ी बलवती थी। वे दूसरे के सुख के लिये अपने सुख को तुच्छ समझ छोड़ देते थे, जैसा कि उन्होंने सारा राज्य पिता के सुख के लिये छोड़ दिया था और आप उस राज्य की किसी वस्तु को बिना राजा की आज्ञा के स्पर्श करना भी पाप समझा।

धैर्य—भीष्म जी पूरे धैर्यवान थे। जो पण उन्होंने किया उसके लिये चाहे उनको कितने ही कष्ट सहन करने पड़े, परन्तु उन्होंने अपने पण को न छोड़ा, बल्कि बड़े धैर्य से उसपर दृढ़ रहे। माता सत्यवती ने जब नियोग की आज्ञा की तो कैसी दृढ़ता से उन्होंने उत्तर दिया है। धैर्य धर्म का प्रथम अङ्ग है, जिसको भीष्म जी ने भली भांति निभाया।

सत्यप्रियता—दुर्योधन के अधीन होने पर भी भीष्म जी सदा उसको फटकारते रहे और समझाते रहे कि पाण्डवों का पक्ष सत्य पर है, तुम हठ छोड़ दो। और विलक्षणता यह देखो कि कौरवों की ओर से युद्ध करते थे, क्योंकि शरीर कौरवों के अन्न से वलिष्ठ बना था; परन्तु आत्मा से पांडवों की विजय चाहते थे। वाह रे सत्यप्रिय! संसार में तेरे जैसा होना दुर्लभ है।

सहनशीलता—दुःख को सहन करते थे कायरों की भांति नहीं, वीरों की भांति। क्या मजाल जो हाय तक निकल जाय। रणभूमि में जब बिलकुल घायल होकर गिरे हैं तो कोई लक्षण दुःख का उनकी प्रकृति से प्रतीत नहीं होता था। किसीसे कहा नहीं कि मुझे कष्ट है। बल्कि परमात्मा का धन्यवाद किया कि मुझे क्षत्री की मृत्यु प्राप्त हुई है। और सुनिए, शरों सहित दाह होना चाहते हैं, मरहम पट्टी नहीं करवाई। धन्य है सहनशीलता!

बाल ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य व्रत कैसा कठिन है इसको वह पुरुष ही जान सकता है जिसने कभी वीर्य्यरक्षा की हो। जो दिन रात पशुओं की भांति भोग करनेवाले हैं वे भला ब्रह्मचर्य्य की महानता को क्या समझ सकते हैं और भीष्म जी को इस अंश में क्या महानता समझ सकते हैं। परन्तु हे भीष्म जी की जीवनी पढ़नेवालो! यदि आप इसकी महानता को समझना चाहते हो, तो शास्त्र की आज्ञा के अनुसार ऋतुदान देना सीखो, फिर तुम समझोगे कि भीष्म जी में यदि कोई अपूर्व गुण था तो वह ब्रह्मचर्य्य था। यह उनके ब्रह्मचर्य्य का ही प्रताप था कि वृद्धावस्था में भी उन्होंने इस प्रकार युद्ध किया और वे शरों की शय्या पर पड़े रहे। भीष्म जी के सब गुणों को छोड़ इस एक गुण को भी यदि कोई पुरुष धारण करता तो मेरा श्रम सफल हो जाता।

निष्कामता—भीष्म जी ने जो काम किया सब निष्काम था। हमलोग यदि एक पैसा भी किसीको दान देते हैं तो चाहते हैं कि यह हमारा सेवक हो जाय। थोड़ी सी बात के लिये उसे कृतघ्न कहने लगते हैं, या यदि थोड़ासा उपकार करते हैं तो अपनी प्रतिष्ठा चाहने लगते हैं। परन्तु भीष्म जी ने यदि किसी पर उपकार किया तो अपना धर्म समझ कर। कोई सेवा की तो अपना कर्तव्य समझ कर। उनका यह सिद्धान्त था—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

भर्तृहरि०

और इसी सिद्धान्तवाले पुरुष ही निष्काम रह सकते हैं, क्योंकि फिर वह अपना कर्तव्य समझ कर काम करते हैं किसीकी परवा नहीं करते।

न उन्होंने परवाह की और न सांसासिक कामनाएं उत्पन्न हुईं।

न्यायपरता—कौरव और पांडव दोनों को एक जैसा चाहते थे, किसीका पक्ष नहीं था। कौरवों के अधीन होने पर भी उनको समझाते रहे और सदा धर्मपथ पर चलने के लिये उपदेश देते रहे।

महानता—नीतिकारों ने महात्मा पुरुष का लक्षण किया है–

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्येदं वचस्येदं कर्मण्येदं दुरात्मनाम्॥

भीष्म जी की आत्मा बड़ी थी, क्योंकि जो वे मन में रखते थे वही कहते और करते थे। यदि पांडवों की जय धर्म के कारण चाहते थे, तो दुर्य्योधन को स्पष्ट कह दिया था कि पांडवों की जीत होगी, तू पाप का मार्ग छोड दे। यह नहीं किया कि पांडवों से और, और कौरवों से दूसरी बात। स्पष्ट वक्ता थे इसीलिये उनकी आत्मा बड़ी थी।

धर्मदृढ़ता—जो जो कार्य्य उनके सामने आए उनको बड़ी बुद्धिमत्ता से उन्होंने कर दिखलाया। अपने धर्म से न गिरना ही उनके जीवन की मुख्य बात थी। जब पिता की प्रसन्नता के लिये कठिन व्रत सामने आया तो उसको भी धर्म जान सिर पर लिया, परन्तु यह नहीं कि कठिन व्रत लेकर शेष जीवन को आलसियों की भांति एक स्थान पर बैठ कर व्यतीत कर दे। नहीं, नहीं, अपने जीवन को वैसा ही बनाए रखा, क्योंकि वे जानते थे

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जीजिविषे शतं समाः
यजु० अ० ४० मं० २

ईश्वर उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो, श्रेष्ठकर्म करते हुए शत वर्ष पर्य्यन्त इस संसार में जीने की इच्छा करो। इसलिये वेद की आज्ञा को सिर पर धर शेष कार्य्यों में उसी प्रकार रत रहे। उन्होंने क्षत्री के क्षात्र धर्म को मृत्यु पर्य्यन्त पूर्ण किया। वे जानते थे कि क्षत्री का धर्म रण में मरना है, इसलिये सदा युद्ध के लिये उद्यत रहते. जहां एक ओर उसी समय में आपस में लड़नेवाले भाई पूरे द्वेषी एक दूसरे के शत्रु थे, वहां भीष्म प्रत्येक से प्रेम, सबसे मित्रता, प्रत्येक को अपने तुल्य समझने वाले थे। धन्य थी वह माता जिसने उनको जन्म दिया था।

जब उनको सन्धि कराने का कार्य्य मिला तो उसको भी पूर्ण किया। दोनों दलों को समझाया, न्याय का पथ बताया, और जब खड्ग उठाने का समत आया तो यह नहीं कि मैं बूढ़ा हूं, क्यों अपने आपको कष्ट में डालूं; मुझे इन झगड़ों से क्या! नहीं, उन्होंने धर्म के अनुसार अपने पक्ष को लेकर युद्ध किया। कई लोग यह कहेंगे कि भीष्म जानते थे कि कौरव पाप पर हैं, फिर उनका पक्ष क्यों लिया। इसका उत्तर यह है कि उन्होंने जो उनका धर्म था वह पालन किया। कौरवों को कह दिया कि तुम्हारी पराजय होगी, तुम पाप को त्याग दो। परन्तु उन्होंने न माना। क्योंकि उन्होंने उनकी सेवा में जीवन व्यतीत किया था, इसलिये यह उनके लिये उचित न था कि अवसर पर साथ छोड़ देते। कई महाशय यह कहेंगे कि फिर युधिष्ठिर को अपनी मृत्यु का कारण क्यों बतलाया। इसका उत्तर यह है कि, उनका धर्म्म था कि शरीर से कौरवों की सेव करते, लेकिन वे जानते थे कि युधिष्ठिर का पक्ष ठीक है, इसलिये वे सदा धर्म्म की जय चाहते थे। उन्होंने कौरवों का कोई भेद युधिष्ठिर पर नहीं प्रकट किया। यदि वे चाहते तो एक दिन में कौरवों को धोखा दे सबको मरवा देते। परन्तु उन्होंने ऐसा करना पाप समझा। अपने विचार में वे सतेज थे, इसलिये उस पक्ष में भीष्म जी के जीवन पर कोई कलङ्क नहीं लग सकता। वे क्षत्रियों की भांति दस दिन तक युद्ध करते रहे और अन्त को घायल हो गिर गए।

घावों के होने पर भी जब उनसे उपदेश की प्रार्थना की गई तो उस समय भी वे अपने धर्म से न चूके और बराबर डेढ़ मास तक उपदेश करते रहे। सारांश यह कि वे धर्म की मूर्ति थे। प्राणी

दिये पर धर्म न छोड़ा। धन्य है वह पुरुष जो धर्म के लिये सांसारिक सुखों को तुच्छ समझता है, धन्य है वह पुरुष जो मृत्यु के लिये सदा उद्यत रहता है। धन्य है वह भूमि जहां भीष्म जैसे पुत्र उत्पन्न होते हैं। धन्य है वह गोद जिसमें ऐसे बालक खेलते और पलते हैं और धन्य है वह समय जिसमें ऐसे वीर उत्पन्न होते हैं जो धर्म को किसी अवस्था में नहीं छोड़ते, कोई कष्ट या किसीका प्रेम उनके मार्ग में बाधक नहीं होता। बूढ़ा भीष्म रण में जाता है, दोनों ओर से अपने वंश के छोटे बड़ों को मरने मारने पर उद्यत देख भी उसके दिल में भय या प्रेम उत्पन्न नहीं होता, और न कोई कारण उसको धर्म से रोक सकता है। शत्रुओं को भी न्याय से पृथक नहीं करना चाहता और अपने धर्म को किस ढङ्ग से पूरा करता है। जब युधिष्ठिर सम्मति लेने जाते हैं तो उनको धर्म्म पक्ष पर खड़ा समझ आशीर्वाद देता है। जो युधिष्ठिर उसके सामने लड़ने मरने को उद्यत खड़ा था, मरते हुए भी भीष्म उसको उपदेश ही देते रहे। उन्होंने नरम तकिए तक की भी इच्छा नहीं की, क्योंकि वे जानते थे कि मेरा धर्म रण में मरना है और रण में क्षत्रिय ऐसी वस्तु नहीं वर्त सकता।

भीष्म जी सच्चे धर्मात्मा थे; बली, सच्चे त्यागी, सच्चे योगी, और सच्चे व्रतधारी थे; उनके जीवन को जिस अंश में देखो महान पाओगे, जिस बात में देखो पूर्ण पाओगे। शारीरिक बल तो पूरा, आत्मिक बल तो पूरा, विद्या तो पूरी, ब्रह्मचर्य्य तो पूरा। उनका जीवन आदर्श के योग्य है। हे भीष्म पितामह जी के जीवन से लाभ उठाने की इच्छा करनेवालो! हे भारतवर्ष के युवको! हे क्षत्रिय कहलाने का अभिमान करनेवालो! भीष्म जी के जीवन के गुणों को सुनहरे अक्षरों में लिख अपने जीवन का आदर्श बनाओ। अपने जीवन में वैसे गुण धारण करने का यत्न करो। वे महान पुरुष थे। उनके जीवन से अपने जीवन को महान बनाओ, क्योंकि

Lives of great men all remind us
We can make our lives sublime.

महान पुरुषों के जीवन इसलिये होते हैं कि उनके जीवन से लाभ उठाया जावे। पुस्तकों में लिखे रहने या समय व्यतीत करने के लिये एक बेर पाठ कर जाने से कभी कोई अच्छा परिणाम नहीं निकला करता। हमारा कर्तव्य क्या है इसको विचारो, एकान्त में बैठ कर अपने जीवन को इस महापुरुष के जीवन से मिलाओ। अन्त को भीष्म जी मनुष्य थे, आप लोगों की भांति दो हाथ, दो कान रखते थे। परन्तु अधिकता क्या थी? अधिकता यह थी कि उन्होंने अपने धर्म को समझ उसके अनुसार जीवन बनाया था। ऐसे नहीं थे कि स्वार्थ के लिये दूसरों को दुःख देनेवाले थे। निष्कपट हृदय के मनुष्य थे जो मानते थे वही कहते और करते थे। इसलिये यदि तुम यह चाहते हो कि हम भी अपने मनुष्यजीवन को सफल करें तो आज से पण करो कि हम अपने दुर्गुणों को एक एक करके छोड़ने का यत्न करेंगे और इस महा पुरुष के गुणों को अपने जीवन में धारण करने का उद्योग करेंगे। मनुष्यजीवन बार बार नहीं मिलेगा, न जाने तुम्हारे कौन से पुण्य उदय हुए जो यह जन्म मिला और फिर अच्छे अच्छे पुरुषों के जीवनों को पढ़ने की बुद्धि मिली, अब भी यदि समय व्यर्थ खोवो तो तुम्हारे जैसा अभाग्य कौन है!

एक विद्यार्थी।

---

## गोपीगीत

हिन्दी भाषा-पद्यानुवाद-सहित

(१)

छन्द इन्द्रिरा।

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥